संचयिका

भाग 2

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

संचयिका

भाग 2

संचयिका

भाग 2

(केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अंतर्गत द्वितीय भाषा हिंदी के रूप में हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए दसवीं कक्षा की पूरक पुस्तक)

इन्द्रसेन शर्मा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
फरवरी 1993 : माघ 1914
पुनर्मुद्रण
अक्टूबर 1993 : कार्तिक 1915

P.D. 90T–MB

आवरण : अमित श्रीवास्तव
अलंकरण : केशव वाघ

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	चिनलापक्कम, क्रोमपेट	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	मद्रास 600064	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743179

MAX. RETAIL PRICE
INCLUSIVE OF ALL TAXES

मूल्य : रु. 16--00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा श्री इण्डस्ट्रीज, बी-116, सेक्टर 2, नौएडा (यू. पी.) द्वारा मुद्रित।

आमुख

नई शिक्षा नीति के अंतर्गत विद्यालयी शिक्षा में भारत के लगभग सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में त्रिभाषा-सूत्र को प्रभावी ढंग से लागू करने का प्रयास किया जा रहा है। इस दृष्टि से अखिल भारतीय संदर्भ में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की तीन स्थितिपरक भूमिकाएँ हो जाती हैं—

1. प्रथम भाषा के रूप में पहली कक्षा से दसवीं कक्षा तक।
2. द्वितीय भाषा के रूप में छठी से दसवीं कक्षा तक, तथा
3. तृतीय भाषा के रूप में सातवीं कक्षा से दसवीं कक्षा तक

द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी भाषा के पठन-पाठन की अपनी विशिष्ट अपेक्षाएँ हो जाती हैं। इसके कारण द्वितीय भाषा की पाठ्यचर्या प्रथम भाषा की पाठ्यचर्या से भिन्न हो जाती है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् का सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग गत दो वर्षों से हिंदी भाषा की पाठ्य-सामग्री तैयार कर रहा है। इस पाठ्य-सामग्री को तैयार करने के कुछ विशिष्ट उद्देश्य हैं। इन्हीं उद्देश्यों के अंतर्गत गत वर्ष हिंदी द्वितीय भाषा की नवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक और पूरक पुस्तक तैयार की गई थी जो केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबंधित विद्यालयों में अप्रैल 1992 से लागू कर दी गई हैं। इसी कड़ी में दसवीं कक्षा के लिए यह पूरक पुस्तक प्रस्तुत है। इस पुस्तक के प्रणयन में जिन प्रमुख सिद्धांतों का विशेष ध्यान रखा गया है, वे इस प्रकार हैं—

1. पुस्तक में ऐसी पठन-सामग्री का समावेश किया जाए जो शिक्षार्थी में राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा केंद्रिक पाठ्यक्रम में प्रतिपादित जीवन-मूल्यों, लोकतंत्र, धर्म-निरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक-न्याय और राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था विकसित कर सके।

2. पठन-सामग्री में भारतीय परिस्थितियों तथा राष्ट्र की सामासिक संस्कृति परिलक्षित हो।
3. पूरक पुस्तक मूलतः स्वाध्याय के द्वारा पठन-रुचि विकसित करने के लिए होती है। अतः प्रस्तुत पुस्तक के लिए ऐसी पाठ्य-सामग्री के निर्माण का प्रयास किया गया है जो अपनी रोचकता, बोधगम्यता एवं विविधता के कारण शिक्षार्थियों को स्व-अध्ययन के लिए तो प्रेरित करे ही, साथ ही उन्हें इस प्रकार की अन्य सामग्री पढ़ने के लिए भी उत्प्रेरित कर सके। इस प्रकार की सामग्री के अध्ययन से छात्रों में उत्तरोत्तर लक्ष्य-भाषा की योग्यता का विकास हो सकेगा।
4. प्रस्तुत पुस्तक की विशिष्टता यह है कि इसमें भारत की सामासिक संस्कृति को केंद्र-बिंदु बनाकर पठन-सामग्री की रचना की गई है। हमारे संविधान ने देश की सामासिक संस्कृति को अखिल भारतीय स्तर पर मुखरित करने का दायित्व हिंदी को सौंपा है। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रस्तावित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में "भारत की सांस्कृतिक विरासत" को पाठ्य-सामग्री के एक मुख्य विषय के रूप में प्रस्तुत करने का दिशा-निर्देश दिया है।

हमारा यह प्रयास रहा है कि प्रस्तुत पुस्तक उपर्युक्त दोनों अपेक्षाओं की पूर्ति कर सके। इस दृष्टि से जहाँ एक ओर अखिल भारतीय संदर्भ में हिंदी के भारतीय सामासिक संस्कृति के संवाहिका रूप को उजागर करने की चेष्टा की गई है वहीं दूसरी ओर साहित्य, समाज, कला, विज्ञान आदि क्षेत्रों में देश की गौरवमयी परंपरा और उसमें निहित जीवन-मूल्यों को रेखांकित करने का प्रयत्न भी किया गया है।

इस कार्य के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों के निर्माण के लिए जनवरी 1990 में हैदराबाद में आयोजित विचारगोष्ठी में भाग लेने वाले प्रमुख शिक्षाविदों, भाषाशास्त्रियों, विषय-विशेषज्ञों और केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की अकादमिक शाखा के तत्कालीन निदेशक डॉ. क. डी. शर्मा एवं बोर्ड की हिंदी पाठ्यक्रम समिति के तत्कालीन अध्यक्ष

स्वर्गीय प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। निर्धारित मार्गदर्शक सिद्धांतों के आधार पर पुस्तक-निर्माण के कार्य में सहयोग देने के लिए विषय-विशेषज्ञों, भाषाविदों, अधिकारी विद्वानों तथा अनुभवी शिक्षकों के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

पांडुलिपि के पुनरवीक्षण में स्वर्गीय प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. आनंद प्रकाश एवं डॉ. जयपाल सिंह 'तरंग' के सहयोग के लिए उनका विशेष आभारी हूँ।

पाठ्य-सामग्री के समायोजन तथा संपादन के लिए परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग में अपने सहयोगी डॉ. इंद्रसेन शर्मा के प्रति भी मैं अपना धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। इस कार्य को पूर्ण करने में परियोजना सहायक कु. रचना भाटिया तथा कु. प्रमिला त्रिपाठी का योगदान भी सराहनीय रहा है। अतः उनको भी मैं धन्यवाद देता हूँ।

आशा है यह पुस्तक शिक्षार्थियों में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के प्रति स्वाध्याय की रुचि विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सकेगी। पुस्तक में संशोधन एवं परिष्करण के लिए सुधी अध्यापकों और शिक्षा-शास्त्रियों के सुझावों का हार्दिक स्वागत है।

डॉ. के. गोपालन
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

पुस्तक-निर्माण में सहयोग के लिए आभार

प्रो. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, प्रो. कैलाशचंद्र भाटिया, प्रो. श्रीधर वशिष्ठ, प्रो. दिलीप सिंह, डॉ. आनंद प्रकाश व्यास, डॉ. शीलमवेंकटेश्वर राव, डॉ. देवेंद्र 'दीपक', श्री बालशौरि रेड्डी, डॉ. मंजु गुप्ता, डॉ. वी.एन. सिंह, डॉ. मानसिंह वर्मा, डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी, डॉ. जयपाल सिंह 'तरंग,' डॉ. शशि शुक्ला, डॉ. कामता कमलेश, डॉ. महेंद्रपाल शर्मा, डॉ. रामकरण डबास, डॉ. रमाकांत मिश्र, डॉ. सुरेश पंत, श्रीमती सुनीता कट्टी एवं डॉ. पुष्पलता श्रीवास्तव।

भूमिका

भारत एक बहुभाषी देश है। बहुभाषिकता के परिप्रेक्ष्य में हिंदी की अनेक भूमिकाएँ हो जाती हैं। एक ओर यह उत्तरी भारत के एक ऐसे विशाल क्षेत्र की भाषा है, जिसकी अनेक जनपदीय बोलियाँ हैं। हिंदी इन बोलियों के बीच संबंध-सूत्र का काम करती है। यह हिंदी का क्षेत्रीय अथवा जनपदीय रूप है। दूसरी ओर अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी आसेतु हिमालय अंतर्देशीय जन संपर्क की भाषा की महत्तर भूमिका निभाती है। यह इसका सार्वदेशिक अथवा राष्ट्रीय रूप है। मध्य युग के संतों ने हिंदी के इसी सार्वदेशिक रूप के माध्यम से अपनी वाणी को जन-जन तक पहुँचाया। उन्नीसवीं सदी में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जन-जागरण की विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रचार-प्रसार के लिए तथा देश में विभिन्न प्रदेशों के पारस्परिक संपर्क के लिए हिंदी संदेशवाहिका बनी। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने देश के कोने-कोने तक आज़ादी का संदेश पहुँचाने के लिए हिंदी को ही चुना। इतना ही नहीं, नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने देश की सीमाओं से बाहर रहने वाले भारतीयों को इसी के माध्यम से देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए प्रेरित किया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश के कर्णधारों ने हिंदी की इसी परंपरागत सार्वदेशिक भूमिका को संविधान की धारा 343 के द्वारा मान्यता प्रदान की है।

हमारा देश अनेक संस्कृतियों का एक ऐसा संगम है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों ने घुल-मिलकर एक सामासिक संस्कृति का रूप धारण कर लिया है। भारत की प्रत्येक भाषा और बोली में अपने क्षेत्र की संस्कृति या कुछ-एक वर्गों की संस्कृति प्रतिबिंबित है, परंतु ऐसी कोई एक भाषा नहीं है जिसने सभी अंगों या तत्वों को एक जगह सँजो रखा हो। अपनी सार्वदेशिक प्रकृति के कारण ही यह कार्य हिंदी द्वारा संपन्न किया जा रहा है। इसीलिए हमारे संविधान ने यह दायित्व

हिंदी को सौंपा है। इस प्रकार समग्र राष्ट्र की सामासिक संस्कृति की संवाहिका के रूप में हिंदी की एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण भूमिका हो जाती है।

हिंदी की इस भूमिका को देखते हुए ही राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में, विद्यालयी स्तर पर त्रिभाषा-सूत्र के अंतर्गत अनिवार्य हिंदी शिक्षण का प्रावधान रखा गया है, जिससे शिक्षार्थी न केवल अखिल भारतीय संदर्भ में हिंदी के प्रयोजनमूलक उपयोग के लिए सक्षम हो, बल्कि अपने देश की सामासिक संस्कृति के आधारभूत तत्वों को भी आत्मसात् कर सके।

आज देश में संकीर्ण संप्रदायवाद, अलगाववाद, असहिष्णुता का बोलबाला है। फलस्वरूप हम भारतीय जीवन-मूल्यों को भूलकर अपनी समन्वयवादी सामासिक संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। देश के भावी नागरिकों को इस भटकाव से बचाने के लिए आवश्यक है कि वे अपनी संस्कृति के उन तत्वों को जानें और पहचानें जिन्हें महाकवि इक़बाल ने "क्या बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी" इन शब्दों द्वारा व्यक्त किया है। इस पहचान की आवश्यकता को रेखांकित करने की दृष्टि से ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने पाठ्यचर्या में अन्य प्रकरणों के अतिरिक्त "हमारी सांस्कृतिक विरासत" संबंधी विषय-सामग्री के समावेश पर बल दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन राष्ट्रीय शिक्षा नीति के इस निर्देश को कार्यरूप देने की दिशा में एक कदम है। इसमें समाविष्ट सामग्री का समग्र ताना-बाना हमारी संस्कृति के आधारभूत तत्वों के इर्द-गिर्द बुना गया है। इस दृष्टि से द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों में प्रस्तुत सहायक पुस्तक राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करने की दिशा में सर्वथा एक नवीन उपागम है।

पाठ्य-सामग्री के संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को केंद्र में रखा गया है :

1. पठन-सामग्री ऐसी हो जिसके माध्यम से विद्यार्थी लोक-परंपरा, साहित्य, कला, विज्ञान, समाज आदि के क्षेत्र में अपनी

सांस्कृतिक विरासत पर गर्व महसूस करने के साथ-साथ आधुनिक चेतना के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित कर सकें।

2. भारत की सामासिक-संस्कृति की संवाहिका हिंदी के माध्यम से विद्यार्थी देश की संस्कृति के सार्वकालिक, सार्वभौमिक तत्वों के बोध के साथ-साथ उसकी समन्वयवादी प्रकृति के प्रति सही अंतर्दृष्टि प्राप्त कर सकें।
3. पठन-सामग्री विद्यार्थी में देश के प्रति भावनात्मक लगाव पैदा करते हुए उसे राष्ट्रीय मुख्यधारा में व्यापक सहभागिता के लिए तैयार कर सके।
4. द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए सहायक पुस्तक होने के कारण पठन-सामग्री की भाषा सहज एवं बोधगम्य हो, इस दृष्टि से विषय-वस्तु की आवश्यकतानुसार यथास्थान शब्दार्थ और टिप्पणियाँ देने का प्रयास भी किया गया है।
5. रोचकता एवं विविधता की दृष्टि से पठन-सामग्री की प्रस्तुति में निबंध, कहानी के अतिरिक्त पत्र, यात्रावृत्त, एकांकी, चित्र-कथा आदि विधाओं को माध्यम बनाया गया है।
6. पठन-सामग्री के बोधन की दिशा में अध्यापक एवं विद्यार्थियों को स्पष्ट दृष्टि देने के विचार से प्रत्येक पाठ के अंत में बोध-प्रश्न दिए गए हैं। आशा है कि इन प्रश्नों के माध्यम से न केवल विद्यार्थियों के बोधन का मूल्यांकन हो सकेगा, बल्कि पाठ में निहित विविध अपेक्षाएँ भी उभरकर सामने आ सकेंगी।

उपर्युक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक को चार खंडों में बाँटा गया है :

– पहले खंड में, पूर्व पीठिका के रूप में भारतीयता के विशिष्ट तत्वों को उभारने का प्रयत्न किया गया है जिससे शिक्षार्थी तथा अध्यापक दोनों में भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषाई पक्षों के संबंध में एक व्यापक दृष्टिकोण विकसित हो

सके। इस खंड में समाविष्ट पठन-सामग्री को मूल्यांकन के पाठ न मानकर आधार पाठों के रूप में लिया जाए।

- दूसरे खंड में, देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं कलात्मक परंपराओं तथा उनमें निहित एकात्मकता को प्रदर्शित करने वाले परिचयात्मक पाठों की रोचक प्रस्तुति की गई है।
- तीसरे खंड में, लोक-कथाओं, पौराणिक चित्र-कथा पर आधारित पाठों द्वारा विद्यार्थियों में वांछित जीवन-मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास किया गया है।
- चौथे खंड में अखिल भारतीय संदर्भ में हिंदी की सार्वदेशिक प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है। इस संदर्भ में मध्य युग में भक्ति-आंदोलन, आधुनिक काल में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक नवजागरण तथा स्वतंत्रता-आंदोलन में हिंदी की विशिष्ट भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। साथ ही भारतीय पर्व-त्यौहारों के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया गया है कि भारतीय संस्कृति में निहित एकात्मकता किस प्रकार हमारे सांस्कृतिक जीवन का एक अंग बन चुकी है।

आशा है कि द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने के लिए पूरक पुस्तक निर्माण का यह नवीन उपागम शिक्षक-शिक्षार्थी दोनों को ही रुचिकर लगेगा। पूरक पुस्तक मूलतः स्वाध्याय हेतु होती है। किंतु जैसा ऊपर कहा जा चुका है, प्रस्तुत पुस्तक की पठन-सामग्री का आधार-बिंदु हमारी सामासिक संस्कृति एवं सांस्कृतिक विरासत है। हो सकता है कि पठन-सामग्री में आए संदर्भ, जीवन-मूल्य कहीं-कहीं स्पष्टीकरण-प्रतिपादन की अपेक्षा करें। अध्यापक बंधुओं से अनुरोध है कि वे अपने अनुभव के आधार पर ऐसे संदर्भों, प्रसंगों और स्थलों का चयन कर विद्यार्थियों का यथास्थान मार्गदर्शन करें।

विषय-सूची

खंड I पूर्व पीठिका

हिंदी साहित्य : एक झलक 1
हिंदी भाषा की विकास-यात्रा 20
भारतीय संस्कृति का स्वरूप 29

खंड II प्राचीन गौरव गरिमा

संत नामदेव : एक समाज सुधारक 39
भारतीय चिकित्सा-विज्ञान 44
कवि-कुल-गुरु कालिदास 50
सागर एक : सरिताएँ अनेक 57
संगीत-स्वामी : हरिदास 75

खंड III हमारी लोक परंपरा

गुणवंती 87
प्रश्न और प्यास 94
सच्चा हीरा 110

खंड IV सांस्कृतिक एकात्मकता

भारतीय भक्तिधारा 117
स्वतंत्रता-संग्राम की कहानी 122
भारतीय पर्व 140
परिशिष्ट
शब्दार्थ एवं टिप्पणी 151

* खंड I पूर्व पीठिका के तीनों पाठ परीक्षा के लिए नहीं हैं।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं । जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा । क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है ।

खंड I

पूर्व पीठिका

हिंदी साहित्य : एक झलक

हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग एक हज़ार वर्ष का इतिहास है। इन वर्षों में इसकी धारा ने अनेक मोड़ लिए हैं, अनेक करवटें बदली हैं। अपने युग और समाज की आवश्यकताओं और माँग के अनुरूप इस धारा में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। आज भी यह धारा अपने नए वेग के साथ प्रवाहित हो रही है। इतिहास की दृष्टि से हिंदी साहित्य को मोटे तौर पर चार कालों में विभाजित किया जाता रहा है—

1. आदिकाल — 1000 ई. से 1400 ई. तक
2. भक्तिकाल — 1400 ई. से 1700 ई. तक
3. रीतिकाल — 1700 ई. से 1850 ई. तक
4. आधुनिक काल — 1850 ई. से आज तक

यह विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए ही है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि एक काल में जो धारा प्रवाहित हुई, आगे के काल में वह एकदम लुप्त हो गई।

आदिकाल

हिंदी साहित्य के आदिकाल में किसी एक सामान्य काव्य-भाषा का विकास नहीं हो पाया था। कारण है कि राजस्थान के चारण कवियों की भाषा कभी राजस्थानी और कभी ब्रजभाषा सी लगती है और विद्यापति की भाषा कभी मैथिली और कभी बांग्ला सी। इसी प्रकार बौद्ध सिद्धों की वाणी में पूर्वीपन का पुट है तो नाथों की वाणी में पच्छिमी का। किंतु एक सामान्य बात यह कही जा सकती है कि इन सब पर अपभ्रंश का भारी प्रभाव था, जिससे वे अपने आपको मुक्त करने का प्रयास कर रही थीं। उस समय की काव्य-भाषा को 'पुरानी हिंदी' कहा गया है।

इस समय समस्त उत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था

और उसमें किसी एक केंद्रीय सत्ता का अभाव था।

इस काल के प्रमुख कवियों में बौद्ध, सिद्ध, सरहपा तथा कण्हपा नाथ कवियों में गोरखनाथ, जैन कवियों में मुनि रामसिंह, पुष्पदंत और शालिभद्र सूरि, वीरगाथाकारों में चंदबरदाई, नरपत नाल्ह तथा जगनिक एवं अन्य कवियों में अमीर खुसरो, अब्दुर्रहमान और विद्यापति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पृथ्वीराज रासो इस युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। इसके रचयिता चंदबरबाई पृथ्वीराज के मित्र कहे जाते हैं। इस ग्रंथ में सम्राट पृथ्वीराज के अनेक युद्धों और विवाहों का सजीव चित्रण हुआ है। ***बीसलदेव रासो*** (नरपत नाल्ह), ***आल्ह-खंड*** (जगनिक), ***विद्यापति की पदावली*** (विद्यापति) तथा अमीर खुसरो की ***पहेलियाँ और मुकरियाँ*** इस युग की अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

बौद्ध-सिद्धों ने अपनी कविता में वर्णाश्रम व्यवस्था पर चोट की है। नाथों ने हठयोग की साधना का व्यापक चित्रण किया है। ब्रह्मचर्य, वाक्-संयम और सदाचरण की महिमा बतलाई है। सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों पर चोट की है। जैन कवियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए अपने काव्य-नायकों का चरित्र वर्णन किया है और सदाचार तथा अहिंसा आदि का उपदेश दिया है। चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता की प्रशंसा की है। इस काल में मुक्तक एवं प्रबंध दोनो प्रकार के काव्यों की रचना हुई। ''दोहा'', 'छप्पय'', पद्धड़िया'', ''चौपाई'' आदि इन कवियों के प्रिय छंद रहे हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य का आदिकाल भाषा तथा प्रवृत्तियों की दृष्टि से संधि का काल है। इसका प्रभाव आगे भक्तिकाल के कबीर, जायसी, तुलसी आदि के काव्य पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। इस काल के कवियों में बौद्ध-सिद्ध, शैव-नाथ, जैन, और मुसलमान सभी हैं और हिंदी से भिन्न कहे जाने वाले क्षेत्र में भी इसकी रचना हुई है। यह ऐसा काल था जब एक ओर तो अपभ्रंश से प्रभावित भाषा में रचनाएँ हो रही थीं तो दूसरी ओर पुरानी हिंदी में। इस कारण इसे ''संधिकाल'' कहते हैं।

भक्तिकाल

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक भारत में मुस्लिम सत्ता पूरी तरह स्थिर हो चुकी थी। अब वह सड़कों, इमारतों आदि के निर्माण में रुचि लेने लगी थी। इन निर्माण कार्यों में समाज के दुर्बल वर्ग ने काम किया जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया। इस्लाम के धुआँधार प्रचार के कारण हिंदुओं में अपने धर्म की सुरक्षा की चिंता हुई। इस स्थिति में दुर्बल वर्ग को समाज में प्रतिष्ठा दिलाने की तथा हिंदू और इस्लाम के संघर्ष को मिटाने की आवश्यकता थी। पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी का उत्तर भारत का भक्ति आंदोलन इसी माँग की उपज था।

भक्ति की यह लहर दक्षिण से उत्तर भारत की ओर आई। भक्ति में आदि आचार्य रामानुज दक्षिण के ही थे। इनकी तीसरी पीढ़ी में रामानंद आते हैं। रामानंद ने उत्तर भारत में भक्ति को जन-जन तक पहुँचाकर इसे लोकप्रिय बनाया। इनके शिष्यों में निर्गुण और सगुण दोनों ही प्रकार के भक्त थे। भक्ति-आंदोलन अखिल भारतीय था। उत्तर भारत के आंदोलन की विशेषता यह थी कि इसमें मुसलमान भी शामिल हुए।

भक्ति की दो धाराएँ बनीं— निर्गुण धारा और सगुण धारा। निर्गुण धारा की दो शाखाएँ हुईं— ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी सूफी शाखा। ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास थे और प्रेममार्गी सूफी शाखा के जायसी। सगुण धारा की भी दो धाराएँ दिखलाई पड़ीं— कृष्णमार्गी शाखा और राममार्गी शाखा। कृष्णमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास माने जाते हैं और राममार्गी शाखा के तुलसीदास। वैसे भक्ति की भावना निर्गुण और सगुण दोनों से परे है— "निर्गुण सगुण से परे तहाँ हमारो ध्यान" यह विभाजन अध्ययन की सुविधा के लिए ही है।

निर्गुण धारा

निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा

महाराष्ट्र के संत नामदेव (14वीं शती) इस शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इसके प्रमुख कवियों में कबीर, रैदास, दादू, गुरु नानक,

मलूकदास एवं सुंदरदास आदि के नाम आते हैं। इनमें भी कबीरदास (1397 ई.—1518 ई.) का स्थान सबसे ऊँचा है। कहते हैं, उनका जन्म ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था और उनका पालन-पोषण एक जुलाहे के घर में हुआ। उनकी दृढ़ भक्ति-भावना ने उनको इतना निडर और आत्मविश्वासी बना दिया कि वे सामाजिक कुरीतियों और बाहरी आडंबरों का दो टूक भाषा में जमकर विरोध कर सके। पंडित और मौलवी दोनों को वे एक साथ फटकार सके। सांसारिक माया-जाल से दूर रहकर भी वे कर्मनिष्ठ थे। अपनी घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में खड़ी बोली, अवधी, ब्रज, पंजाबी, फ़ारसी के शब्दों का मेल है। इसीलिए उसे पंचमेल खिचड़ी तथा सधुक्कड़ी कहा जाता है। **बीजक** में उनकी वाणी का संकलन हुआ है।

गुरु नानक (1469 ई. — 1531 ई.) ने पंजाबी और हिंदी दोनों में f..खा। उन्होंने भी हिंदू वर्णाश्रम व्यवस्था और कर्मकांड का विरोध किया और सर्वधर्म समभाव पर जोर दिया। उनकी बानी ***आदि गुरु ग्रंथ साहिब*** में संकलित हैं। उन्हीं से सिख गुरुओं की एक परंपरा शुरू हुई। इन गुरुओं ने हिंदी में भी भक्ति की रचनाएँ कीं।

रैदास (15वीं शती) समाज के दुर्बल वर्ग से आए थे। इनकी बानी ***आदि गुरु ग्रंथ साहिब*** में तथा कुछ **संतबानी** में संकलित है। दादू दयाल को कुछ लोग निम्न वर्ण का और कुछ लोग मुसलमान मानते हैं। इनकी वाणी पर कबीर का प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

हिंदू-मुस्लिम कटुता को मिटाने और समाज के निम्न वर्णों में आत्मविश्वास जगाने में इस शाखा के कवियों का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने शास्त्र और ब्राह्मणों के कर्मकांड का प्रबल विरोध किया। धर्म में घुस आए पाखंड पर करारी चोट की। सर्वधर्म समभाव पर बल दिया और मानवता के प्रति आस्था उत्पन्न की।

← **चित्र** 1. भारतीय भक्ति धारा के प्रमुख कवि
1. पुरन्दर दास, 2. कबीर, 3. सूरदास, 4. तुलसीदास, 5. चैतन्य महाप्रभु, 6. जनाबाई, 7. संत ज्ञानेश्वर, 8. मीरा बाई, 9. नरसी मेहता, 10. तुकाराम

निर्गुण प्रेममार्गी शाखा

इस परंपरा का प्रारंभ मुल्ला दाऊद के ***चंदायन*** से माना जाता है, किंतु इसका चरम विकास जायसी के ***पद्मावत*** में ही देखने को मिलता है। जायसी ने ***अखरावट, आखिरी कलाम*** आदि कृतियों की रचना भी की पर उनकी ख्याति का आधार ***पद्मावत*** ग्रंथ ही है। इसमें पद्मावती की प्रेम-कथा का रोचक वर्णन हुआ है। रत्नसेन की पहली पत्नी नागमती के वियोग का अनूठा वर्णन है। इसकी भाषा अवधी है। इसकी रचना शैली पर आदिकाल के जैन कवियों की दोहा-चौपाई पद्धति का प्रभाव है।

इस परंपरा के अन्य कवियों में कुतुबन, मंझन, शेख नबी, उसमान और कासिम शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन कवियों ने सूफीमत के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदुओं की प्रचलित प्रेम-कथाओं को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। इन्होंने हिंदू धर्म की अनेक बातों को अपनाकर हिंदू और मुसलमानों के बीच की कटुता को मिटाने का प्रयत्न किया। इन्होंने भारतीय नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इन्होंने अधिकांशतः नायिका के नाम पर अपने काव्यों का नामकरण किया। अपनी साधना में उसे ईश्वर का प्रतीक माना। इनकी काव्य-रचना के मूल में प्रेम है। ये प्रेम की पीर के गायक हैं और इनका प्रेम लौकिक से अलौकिक की ओर उन्मुख हुआ है।

सगुण धारा

सगुण धारा अवतारों और उनकी लीला में विश्वास करती है। अनेक देवी-देवताओं की मूर्ति-पूजा, भजन और कीर्तन आदि में उनकी आस्था है। यही आस्था हिंदी साहित्य की कृष्णमार्गी एवं राममार्गी शाखाओं में दिखाई देती है। यहाँ इन शाखाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

कृष्णमार्गी शाखा

दक्षिण के आचार्य वल्लभ ने उत्तर में आकर पुष्टि मार्ग की

स्थापना की। उन्होंने अपने इष्ट देव कृष्ण के अनुग्रह की प्राप्ति को ही "पुष्टि" कहा। उनके मत को मानने वालों में सूरदास (1483–1563 ई.) का नाम सर्वोपरि है। सूरदास गोवर्धन पर्वत पर बने श्रीनाथ जी के मंदिर में कृष्ण की उपासना में लीन रहते थे। उन्होंने वल्लभाचार्य की प्रेरणा से कृष्ण की विविध लीलाओं का सजीव चित्रण किया है। बाल लीलाओं के चित्रण में उनका मुकाबला नहीं है। उन्होंने राधा तथा कृष्ण के शृंगार का अनूठा चित्रण किया है। उन्होंने ब्रजभाषा का इतना परिपक्व, मधुर और सफल प्रयोग किया है कि आगे शताब्दियों तक वह काव्य-भाषा बनी रही। ***सूरसागर*** उनकी ख्याति का आधार है। उन्होंने कुछ अन्य ग्रंथों की भी रचना की है।

पुष्टिमार्गी कवियों में से आठ कवियों को चुनकर "अष्टछाप" की स्थापना की गई। इनमें सूरदास के अतिरिक्त कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास आते हैं।

कृष्ण भक्त कवियों में मीरा (1516 ई.–1546 ई.) का उच्च स्थान है। वे कृष्ण की अनन्य भक्त थीं। लोक-लाज छोड़कर वे कृष्ण-प्रेम में दीवानी दिखलाई पड़ती हैं। अतः उनकी भक्ति में शृंगार का पुट है। आज भी उनके पद लोक में अत्यधिक चाव से गाए, पढ़े और सुने जाते हैं।

रसखान और रहीम जैसे मुसलमान कवियों ने भी भाव-विभोर होकर कृष्ण भक्ति से संबंधित रचनाएँ की हैं। रसखान के सवैये और कवित्त तथा रहीम के दोहे पाठक को काव्य-रस में डुबो देते हैं। बेगम ताज की कृष्ण-भक्ति भी उल्लेखनीय है।

राममार्गी शाखा

इस शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास (1532–1623 ई.) हैं। तुलसीदास ने अपने इष्ट के रूप में राम को चुना और उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया। सूरदास के कृष्ण जहाँ पग-पग पर मर्यादाओं को तोड़ते हैं, वहाँ तुलसी के राम सर्वत्र मर्यादा की रक्षा करते हैं। उन्होंने विभिन्न मतों और उपासना-पद्धतियों में समन्वय

स्थापित किया। भारतीय संस्कृति के उन्नायकों में भी उनका प्रमुख स्थान है। उत्तर भारत के रीति-रिवाजों, संस्कारों और जीवन-पद्धति के निर्माण में उनका अमिट योगदान है। अवधी, ब्रज और संस्कृत पर उनका समान अधिकार था। उनका ***रामचरित मानस*** हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। ***कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली*** तथा ***कृष्ण गीतावली*** आदि उनकी अन्य कृतियाँ हैं।

नाभादास, प्राणचंद चौहान तथा हृदयराम इस काल के अन्य राम-भक्त कवि हैं। बाद में केशवदास की ***रामचंद्रिका*** भी इस शाखा का उल्लेखनीय ग्रंथ है।

भक्तिकाल को हिंदी-साहित्य का स्वर्ण-काल कहा जाता है। इस काल के साहित्य ने समाज को गली-सड़ी रूढ़ियों से मुक्ति दिलाई। उसमें नया विश्वास जगाया। उसे नई आस्था दी और उसमें उच्च मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा की। साहित्यिक दृष्टि से भी वह काव्य उच्चकोटि का है। ब्रजभाषा और अवधी दोनों ही काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। मुक्तक के लिए ब्रजभाषा और प्रबंध-काव्य के लिए प्रायः अवधी का प्रयोग किया गया।

रीतिकाल

ऐतिहासिक दृष्टि से यह काल जहाँगीर और शाहजहाँ के वैभव-विलास से लेकर मुगल साम्राज्य के पतन तक का काल है। जहाँगीर और शाहजहाँ के वैभव-विलास ने अन्य सामंतों और दरबारियों को भी विलासप्रिय बना दिया। समाज में दो वर्ग स्पष्टतः नज़र आने लगे— किसान और मजदूरों का उत्पादक वर्ग और बादशाह-सामंतों, जमींदारों आदि का वर्ग। सामान्यतः कवि लोग इस धनी वर्ग के लिए काव्य रचना करते थे और उनसे पुरस्कार पाते थे।

भक्तिकाल में शृंगार की जो धारा अपने इष्ट देव की ओर बही थी, अब वह आश्रयदाताओं की ओर मुड़ गई। काव्य 'राधा-कन्हाई के सुमिरन का बहाना' बनकर अपने आश्रयदाताओं को रिझाने में लग गया। फलतः इस काल की कविता भी एक बँधी-बँधाई रीति में ढल गई।

रीतिकालीन कवियों को मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटा जाता रहा है— (1) रीति-बद्ध कवि, (2) रीति-मुक्त कवि और (3) रीति-सिद्ध कवि। रीति-बद्ध कवि वे हैं, जिन्होंने काव्य-रचना के साथ-साथ लक्षण-ग्रंथों की भी रचना की है। लक्षण-ग्रंथों में अलंकार, नायक-नायिका भेद तथा रस आदि का शास्त्रीय बखान होता था। इस कोटि के कवि, कवि होने के साथ-साथ आचार्य भी कहलाए। इनमें केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, सेनापति, देव और पद्माकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रीति-मुक्त कवियों ने लक्षण-ग्रंथों की रचना की। इनमें घनानंद, बोधा, ठाकुर एवं आलम प्रमुख हैं। रीति-सिद्ध कवि बिहारी ([illegible]) की स्थिति इन दोनों ही वर्गों से कुछ भिन्न है। उन्होंने अलग से कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा। अपनी ***सतसई*** में ही उन्होंने अलंकार, नायक-नायिका भेद और रस आदि को घटित करके दिखा दिया। इसलिए आलोचकों को स्वीकार करना पड़ा कि जो ***बिहारी सतसई*** में नहीं है, वह और कहीं नहीं है। ***बिहारी सतसई*** में सात सौ से अधिक दोहे हैं। कवि ने छोटे-से-छोटे ***दोहा*** छंद में अमिट अर्थ भर दिया है। इसलिए उनके दोहों के लिए गागर में सागर कहा जाता है।

केशवदास (1555 ई.—1617 ई.) को रीतिकाल का प्रवर्त्तक माना जाता है। उनकी ***कविप्रिया*** और ***रसिक प्रिया*** से ही लक्षण-ग्रंथों की परंपरा शुरू हुई। उनकी ***रामचंद्रिका*** को छंदों का अजायबघर कहा जाता है। यह रचना संवादों के लिए भी प्रसिद्ध है। वीर रस का कवि होने के कारण भूषण (1613 ई.—1715 ई.) की स्थिति रीति-बद्ध कवियों में अलग है। गिरिधर की कुंडलियों और वृंद के दोहों में नीति की अभिव्यक्ति हुई है।

रीतिमुक्त कवियों में घनानंद (1689 ई.—1739 ई.) का प्रमुख स्थान है। ***सुजान-सागर*** और ***विरह लीला*** इनके प्रमुख काव्य-ग्रंथ हैं। ये प्रेम की पीर के सिद्ध गायक हैं। इनकी निश्छल और वास्तविक प्रेम की अनुभूति पाठक के मर्म को छू लेने में समर्थ है।

शृंगार का चित्रण इस काल की कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसलिए कुछ लोग इसे "शृंगार काल" कहते हैं। रीतिबद्ध कवियों ने

श्रृंगार-चित्रण के नाम पर नायक-नायिका भेद, उनकी उछल-कूद, मान-मनव्वल और नायिका के रूप का चित्रण अधिक किया है। रूप-चित्रण में भी नेत्रों के चित्रण पर अधिक जोर है। लक्षण-ग्रंथों की रचना भी इस काव्य की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है। अलंकारों का प्रयोग और कथन का अनूठा और चमत्कारपूर्ण ढंग इनकी काव्य शैली की विशेषता है। इस काल में अनेक सरस और मार्मिक मुक्तकों की रचना हुई है। प्रबंधकाव्य कम लिखे गए। इस काल की कविता में ब्रजभाषा का चरम विकास दिखलाई पड़ता है। कवित्त, सवैया और दोहा इस काल की कविता के प्रमुख छंद हैं।

आधुनिक काल

आधुनिक काल आते-आते भारत में औद्योगीकरण का प्रारंभ होने लगा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग का प्रारंभ हुआ। आवागमन के साधनों का विकास हुआ। अंग्रेजी और पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव बढ़ा और जीवन में बदलाव आया। ईश्वर के साथ-साथ आदमी को महत्व दिया गया। भावना के स्थान पर विचार प्रमुख हो गया। हिंदी-साहित्य इन्हीं स्थितियों-परिस्थितियों में आगे बढ़ा।

आधुनिक काल की दो बड़ी विशेषताएँ हैं–

1. गद्य का विकास और 2. खड़ी बोली का साहित्य-माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित होना। इस युग में खड़ी बोली गद्य का विकास अनेक विधाओं में हुआ। इससे पहले भी हिंदी का गद्य काफी मात्रा में मिलता है। इस काल में मानक गद्य की प्रधानता रही। इसीलिए इसे 'गद्य-युग' भी कहा जाता है।

इस काल में गद्य और कविता दोनों ही क्षेत्रों में भरपूर लिखा गया। इनके विकास की एक झलक यहाँ दी जा रही है।

गद्य का विकास

खड़ी बोली गद्य के विकास को विभिन्न सोपानों में विभक्त किया जा सकता है–

1. भारतेंदु पूर्व युग — 1800 ई. से 1850 ई. तक
2. भारतेंदु युग — 1850 ई. से 1900 ई. तक
3. द्विवेदी युग — 1900 ई. से 1920 ई. तक
4. रामचंद्र शुक्ल एवं प्रेमचंद युग— 1920 से 1936 ई. तक
5. अद्यतन युग — 1936 ई. से आज तक

भारतेंदु पूर्व युग

खड़ी बोली गद्य का विकास 19वीं शताब्दी के आसपास हुआ। इस विकास में कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज (स्थापना 1802 ई.) की भूमिका महत्वपूर्ण है। इस कालेज के दो विद्वानों— लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने गिलक्राइस्ट के निर्देशन में क्रमशः ***प्रेम सागर*** तथा **नासिकेतोपाख्यान** पुस्तकें तैयार कीं। इसी समय सदासुखलाल ने ***सुखसागर*** तथा मुंशी इंशाअल्लाखां ने ***रानी केतकी की कहानी*** की रचना की। इन ग्रंथों की भाषा में ब्रजमिश्रित खड़ी बोली का प्रयोग हुआ।

गद्य के इस विकास में ईसाई धर्म प्रचारकों ने हिंदी की छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर योगदान किया। बंगाल के राजा राममोहन राय ने 1815 ई. में ***वेदांतसूत्र*** का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित कराया। उन्होंने 1829 में ***बंगदूत*** नामक पत्र हिंदी में निकाला। 1826 ई. में कानपुर के पं. जुगलकिशोर ने हिंदी का पहला समाचार-पत्र उदंतमार्तंड कलकत्ता से निकाला। गुजरातीभाषी और आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ ***सत्यार्थ प्रकाश*** की रचना खड़ी बोली गद्य में की।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885 ई.) को हिंदी-साहित्य के आधुनिक काल का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने अपने सहयोगियों को भी लेखन के लिए प्रेरित किया। वे व्यक्ति नहीं संस्था थे। उन्होंने ***कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगज़ीन*** और ***हरिश्चंद्र पत्रिका*** निकाली और अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं— ***चंद्रावली, भारतदुर्दशा, अंधेरनगरी।*** इनके नाटक रंगमंच पर भी खेले गए। इस

काल में निबंध, नाटक, उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे।

श्रीनिवासदास के उपन्यास ***परीक्षा गुरु*** को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास ***भाग्यवती*** को हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकी नंदन खत्री का ***चंदकांता*** तथा ***चंद्रकांता संतति*** आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि इनको पढ़ने के लिए बहुत-से अहिंदी भाषियों ने भी हिंदी सीखी।

इस युग की कहानियों में शिवप्रसाद 'सितारे हिंद' की ***राजा भोज का सपना*** महत्वपूर्ण है।

द्विवेदी युग

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' रखा गया। सन् 1903 ई. में द्विवेदी जी ने ***सरस्वती*** पत्रिका क संपादन का कार्यभार सँभाला। उनका महत्व इस बात में है कि उन्होंने खड़ी बोली गद्य के रूप को स्थिर किया और अन्य कवि-लेखकों को भी खड़ी बोली में लिखने के लिए प्रेरित किया।

इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी, माधवप्रसाद मिश्र, श्यामसुंदरदास, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', बालमुकुंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी की ***इंदुमती*** कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की

प्रथम कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की ***दुलाई वाली,*** शुक्लजी की ***ग्यारह वर्ष का समय,*** प्रसाद जी की ***ग्राम*** और चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की ***उसने कहा था*** आदि महत्वपूर्ण हैं।

समालोचना के क्षेत्र में पं. पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने कुछ नाटक लिखे।

रामचंद्र शुक्ल एवं ***प्रेमचंद युग***

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्व है। पं. रामचंद्र शुक्ल (1884–1941) ने निबंध, हिंदी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध-लेखन किया। साहित्य-समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। ***हिंदी शब्द-सागर*** की भूमिका के रूप में लिखा गया उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए है। जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेंद्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। अब कथा साहित्य केवल मनोरंजन, कौतूहल तथा नीति का विषय नहीं रहा, बल्कि सीधे जीवन की समस्याओं से जुड़ गया। उन्होंने ***सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन*** एवं ***गोदान*** आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन-सौ से अधिक कहानियाँ ***मानसरोवर*** के आठ भागों तथा ***गुप्तधन*** के दो भागों में छपी हैं। ***पूस की रात, कफन, शतरंज के खिलाड़ी, पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा*** तथा ***ईदगाह*** आदि उनकी कहानियाँ खूब लोकप्रिय हुईं। इस काल के अन्य कथाकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', वृंदावन लाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', उपेंद्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवती चरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके ***चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी***

जैसे ऐतिहासिक नाटकों में देशप्रेम और नारी जागरण हैं। इनके नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्धतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के अन्य उल्लेखनीय नाटककार हैं।

अद्यतन काल

इस काल में गद्य का चहुँमुखी विकास हुआ है। पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डा. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', विवेकी राय और कुबेरनाथ राय ने ललित निबंधों की रचना की है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्रनाथ त्यागी तथा के. पी. सक्सेना के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्‌घाटन में सफल हुए हैं।

जैनेंद्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवतीचरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की। नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतराय तथा राही मासूम रज़ा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के सृजन में संलग्न हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायाण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा तथा मोहन राकेश के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामवृक्ष बेनीपुरी, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को समृद्ध किया।

आज गद्य की अनेक नई विधाओं जैसे यात्रा-वृतांत, रिपोर्ताज, रेडियो-रूपक, आलेख आदि में विपुल साहित्य की रचना हो रही है और गद्य की विधाएँ एक दूसरे में घुलमिल रही हैं।

कविता

आधुनिक काल की कविता का विकास निम्नलिखित धाराओं में हुआ—

1. नवजागरण काल (भारतेंदु युग)— 1850 ई. से 1900 ई. तक
2. सुधार काल (द्विवेदी युग)— 1900 ई. से 1920 ई. तक
3. छायावाद— 1920 ई. से 1936 ई. तक
4. प्रगतिवाद-प्रयोगवाद— 1936 ई. से 1953 ई. तक
5. नई कविता व समकालीन कविता—1953 ई. से आज तक

नवजागरण काल (भारतेंदु युग)

इस काल की कविता की बड़ी विशेषता यह है कि यह पहली बार जन-जीवन की समस्याओं से सीधे जुड़ती है। इस काल की कविता में भक्ति और श्रृंगार के साथ समाज-सुधार की भावना भी अभिव्यक्त हुई। पारंपरिक विषयों की कविता का माध्यम ब्रजभाषा ही रही किंतु जहाँ ये कविताएँ नव जागरण के स्वर की अभिव्यक्ति करती हैं, वहाँ इनकी भाषा खड़ी बोली हो जाती है।

कवियों में भारतेंदु हरिश्चंद्र का व्यक्तित्व प्रधान रहा। उन्हें नव जागरण का अग्रदूत कहा जाता है। प्रतापनारायण मिश्र ने हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान की वकालत की। अन्य कवियों में उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सुधार काल (द्विवेदी युग)

हिंदी कविता को नया रंग-रूप देने में श्रीधर पाठक का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्हें प्रथम स्वच्छंदतावादी कवि कहा गया है। उनकी **एकांतयोगी, कश्मीर सुषमा** खड़ी बोली की सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने **पथिक, मिलन** और **स्वप्न** काव्यों में इस

धारा का विकास किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के ***प्रियप्रवास*** को खड़ी बोली का पहला महाकाव्य माना गया है। महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली में अनेक काव्यों की रचना की। इन काव्यों में ***भारतभारती, साकेत, जयद्रथ वध, पंचवटी*** और ***जयभारत*** आदि उल्लेखनीय हैं। उनकी ***भारतभारती*** में स्वाधीनता आंदोलन की ललकार है। राष्ट्रीय प्रेम उनकी कविताओं का प्रमुख स्वर है। इस काल के अन्य कवियों में सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, नाथूराम शंकर शर्मा तथा गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

छायावाद

कविता की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण युग है। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा महादेवी वर्मा ने हिंदी कविता को शिखर पर पहुँचाया। इसके अतिरिक्त इस काल में एक दूसरी धारा भी थी जो सीधे-सीधे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी थी। इसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेंद्र शर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस युग की प्रमुख कृतियों में प्रसाद की ***कामायनी*** और ***आँसू***, पंत का ***पल्लव, गुंजन*** और ***वीणा***, निराला की ***गीतिका*** और ***अनामिका*** तथा महादेवी वर्मा की ***यामा, दीपशिखा, सांध्यगीत*** आदि कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। ***कामायनी*** को आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जाता है।

छायावादोत्तर काल में हरिवंशराय बच्चन का नाम उल्लेखनीय है। छायावादी कविता में आत्मपरकता, प्रकृति के अनेक रूपों का सजीव चित्रण, विश्वमानवता के प्रति प्रेम आदि की अभिव्यक्ति हुई है। सूक्ष्म भावों को प्रकट करने की क्षमता हिंदी भाषा में विकसित हुई।

प्रगतिवाद

सन् 1936 के आसपास से कविता के क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ा। प्रगतिवाद ने कविता को जीवन के यथार्थ से जोड़ा। प्रगतिवादी कवि कार्ल मार्क्स की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।

युग की माँग के अनुरूप छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने अपनी बाद की रचनाओं में प्रगतिवाद का साथ दिया। नरेंद्र शर्मा और दिनकर ने भी अनेक प्रगतिवादी रचनाएँ कीं। प्रगतिवाद के प्रति समर्पित कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री और मुक्तिबोध के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस धारा में समाज के शोषित वर्ग—मजदूर और किसानों--के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई। धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक विषमता पर चोट की गई। खड़ी बोली कविता एक बार पुनः खेतों और खलिहानों से जुड़ी।

प्रयोगवाद

प्रगतिवाद के ही समानांतर प्रयोगवाद की धारा भी प्रवाहित हुई। अज्ञेय को इस धारा का प्रवर्तक स्वीकार किया जाता है। सन् 1943 ई. में अज्ञेय ने ***तार-सप्तक*** का प्रकाशन किया था। इसके सात कवियों में प्रगतिवादी कवि अधिक थे। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, नेमिचंद जैन, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर और भारतभूषण अग्रवाल ये सभी कवि प्रगतिवादी हैं। इन कवियों ने कथ्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक नए-नए प्रयोग किए। अतः ***तार-सप्तक*** को प्रयोगवाद का आधार ग्रंथ माना गया। अज्ञेय द्वारा संपादित ***प्रतीक*** में इन कवियों की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं।

नई कविता और ***समकालीन कविता***

सन् 1953 ई. में इलाहाबाद से ***नई कविता*** पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस पत्रिका में नई कविता को प्रयोगवाद से भिन्न रूप में प्रतिष्ठित किया गया। ***दूसरा सप्तक*** (1951), ***तीसरा सप्तक*** (1959) तथा ***चौथा सप्तक*** के कवियों को भी नए कवि कहा गया। वस्तुतः नई कविता को प्रयोगवाद का ही भिन्न रूप माना जाता है। इसमें भी दो धाराएँ परिलक्षित होती हैं— 1. वैयक्तिकता को सुरक्षित रखने के प्रयत्न करने वाली धारा, जिसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, कुँवरनारायण, श्रीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त प्रमुख हैं तथा 2. प्रगतिशील धारा, जिसमें

मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह तथा धूमिल आदि उल्लेखनीय हैं। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इन दोनों धाराओं का मेल दिखाई पड़ता है। यहाँ अनुभव की प्रामाणिकता, लघुमानव की प्रतिष्ठा तथा बौद्धिकता का आग्रह आदि प्रमुख प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। साधारण बोलचाल की शब्दावली में असाधारण अर्थ भर देना इनकी भाषा की विशेषता है।

समकालीन कविता में गीत और नवगीत को प्रधानता मिल रही है। हिंदी ग़ज़ल का चलन भी बढ़ रहा है।

आज हिंदी साहित्य की धारा निरंतर गतिशील और व्यापक होती जा रही है। इसको गतिशील और व्यापक बनाने में संपूर्ण भारत के प्रदेशों, सभी जातियों और धर्मों के साहित्यकारों का योगदान है।

अब आप जान गए होंगे

1. हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग एक हजार वर्षों का इतिहास है।
2. अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे चार भागों में बाँटा गया है।
3. आदिकाल भाषा एवं प्रवृत्तियों की दृष्टि से संधि का काल है। इस काल की काव्य-भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव है। चंदबरदाई, अमीर खुसरो तथा विद्यापति आदि इसके प्रमुख कवि हैं तथा ***पृथ्वीराज रासो*** इस काल का प्रमुख महाकाव्य।
4. भक्ति काल हिंदी साहित्य का स्वर्ण काल है। इसमें निर्गुण एवं सगुण भक्त कवियों ने अपनी काव्य-रचनाएँ कीं। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, रसखान और रहीम इसके उल्लेखनीय कवि हैं एवं ***पदमावत, सूरसागर*** तथा ***रामचरितमानस*** इस काल के प्रमुख ग्रंथ।
5. रीतिकाल श्रृंगारिक रचनाओं के साथ-साथ लक्षण-ग्रंथों की रचना

के लिए भी प्रसिद्ध है। इसमें अनेकानेक सरस एवं मधुर मुक्तकों की रचना हुई।

6. आधुनिक काल में खड़ी बोली गद्य का विकास एक महत्वपूर्ण घटना है। काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली का चरम विकास इस काल की कविता में मिलता है।
7. गद्य में निबंध, उपन्यास, नाटक, कहानी तथा एकांकी आदि महत्वपूर्ण विधाओं का विकास हुआ। इनके अतिरिक्त जीवनी, आत्मकथा, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में भी रचनाएँ हुईं।
8. नव जागरण काल, सुधार काल, छायावाद, प्रगतिवाद-प्रयोगवाद तथा नई कविता एवं समकालीन कविता का विकास आधुनिक काल में हुआ।

हिंदी भाषा की विकास-यात्रा

"हिंदी" शब्द से हमारा तात्पर्य हिंदी भाषी क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा से है। हिंदी भाषा के प्रयोग का यह क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसके अंतर्गत अनेक जनपदीय बोलियाँ आती हैं। इनमें कई बोलियाँ साहित्यिक भाषा के रूप में भी प्रयुक्त होती रही हैं। राजस्थानी में चंदबरदाई और मीरा, मैथिली में विद्यापति, अवधी में तुलसी और जायसी, ब्रज में सूरदास और बिहारी तथा खड़ी बोली में भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, प्रेमचंद, अज्ञेय आदि ने अपनी साहित्य रचना की।

हिंदी का नामकरण

प्रश्न उठता है कि "हिंदी" नाम कैसे पड़ा ? वास्तव में "हिंदी" शब्द का प्रयोग फारस और अरब से प्रारंभ हुआ। इस शब्द का उद्भव संस्कृत के "सिंधु" शब्द से माना गया है। सिंध नदी के आस-पास के क्षेत्र को सिंधु कहते हैं। ईरानी में "स" का उच्चारण "ह" होता है , इसलिए "सिंधु" का रूप "हिंदु" हो गया। बाद में यह शब्द "हिंद" हो गया। यह हिंद शब्द पूरे भारत के लिए प्रयुक्त होने लगा। इसके साथ ही हिंद से संबंधित प्रत्येक वस्तु को "हिंदी" कहा जाने लगा। किंतु बाद में "हिंदी" शब्द एक भाषा विशेष तक ही सीमित हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक उर्दू, हिंदुस्तानी, रेख्ता आदि भाषाओं के लिए संयुक्त नाम हिंदी ही स्वीकार किया गया था। उस समय हिंदी न तो अरबी-फारसी की ओर झुकी हुई थी और न ही संस्कृत की ओर। इसके बाद स्थिति बदल गई। संस्कृत मिश्रित भाषा रूप के लिए "हिंदी" का प्रयोग होने लगा और अरबी-फारसी मिश्रित भाषा को "उर्दू" कहा गया। अब एक ही भाषा के दो रूपों को

"हिंदी" और "उर्दू" अलग-अलग नाम दे दिए गए। ऐसा करने के पीछे अंग्रेजों की कूटनीति थी। वे उर्दू को मुसलमानों की भाषा और हिंदी को हिंदुओं की भाषा सिद्ध करना चाहते थे। ऐसा करके अंग्रेज दोनों समुदायों के बीच अलगाव उत्पन्न करना चाहते थे।

काल-विभाजन

हिंदी भाषा का इतिहास लगभग 1000 ई. से माना जाता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि इससे पहले हिंदी नहीं बोली जाती थी। भाषा का प्रवाह जलधारा के समान होता है, इसलिए इसका काल विभाजन निश्चित तारीख से नहीं किया जाता। अतः इस समय जो साहित्य रचा गया, उसी को आधार मानकर यह विभाजन किया गया है। मोटे तौर पर हिंदी भाषा के इतिहास को तीन कालों में बाँटा जाता है : आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल।

1. **आदिकाल**— यह काल 1000 ई. से 1500 ई. तक माना जाता है।

इस काल में हिंदी पर इससे पहले बोली जाने वाली अपभ्रंश और प्राकृत भाषाओं का अधिक प्रभाव था। इसे "पुरानी हिंदी" भी कहते हैं। धीरे-धीरे इस पर अपभ्रंश का प्रभाव कम होने लगा और वाक्य-रचना का क्रम निश्चित होने लगा। नाथों और सिद्धों ने पूरे भारत में इस भाषा के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान दिया। इसका श्रेय नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ को जाता है। चौरासी सिद्धों में से कण्हपा ने कर्नाटक में इस भाषा के माध्यम से प्रचार-प्रसार किया।

2. **मध्यकाल**— यह काल 1500 ई. से 1800 ई. तक माना जाता है।

इस काल तक आते-आते प्राकृत-अपभ्रंश से विकसित हिंदी की कई बोलियाँ साहित्य का माध्यम बनीं। इनमें प्रमुख थीं— ब्रजभाषा तथा अवधी। हिंदी का मध्यकाल भक्ति आंदोलन का भी काल था। भक्ति आंदोलन का ब्रजभाषा और अवधी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। यह भक्ति आंदोलन का प्रभाव था कि ब्रजभूमि के बाहर

भी ब्रजभाषा में रचनाएँ हुईं। बंगाल और असम में ब्रजभाषा क्रमशः "ब्रजबुलि" और "ब्रजावली" कहलाई। सूरदास की रचनाओं में ब्रजभाषा का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। तेलुगु भाषी बल्लभाचार्य, मराठी के नामदेव और तुकाराम, गुजराती के नरसी मेहता और प्राणनाथ ने भी इस भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दक्षिण भारत के तंजावूर नगर में कृष्णभक्ति पर कई नाटकों की रचना हुई।

भक्तिकाल की दूसरी भाषा अवधी है। रामभक्त कवियों की रचनाएँ मूलतः अवधी में हैं। इन रचनाओं में तुलसीदास द्वारा लिखी गईं ***रामचरितमानस, कवितावली, विनयपत्रिका*** आदि प्रमुख हैं। इस काल में खड़ी बोली में भी रचनाएँ हुई हैं। अमीर खुसरो की पहेलियाँ, मुकरियाँ इसका उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त कबीर, नानक आदि की भाषा के साथ अरबी-फारसी के शब्दों के मिश्रण से हिंदी का 'सधुक्कड़ी' भाषा रूप भी विकसित हुआ। हिंदी का यह रूप साधु-संतों, फ़कीरों आदि के माध्यम से सम्पूर्ण भारत में दूर-दूर तक चारों दिशाओं में फैला।

इस मिश्रित भाषा के प्रयोग के कारण ही यह निश्चित कर पाना कठिन है कि गुरु नानक ने अपनी रचनाएँ पंजाबी में लिखीं या हिंदी में, मीरा के पदों में राजस्थानी है या ब्रजभाषा और विद्यापति की रचनाएँ मैथिली में हैं या बाङ्ला में। इन सब का मिला-जुला एक नाम "हिंदी" सार्थक समझा गया। इसी काल में दक्षिण भारत में भी 'दक्खिनी हिंदी' में काफी रचनाएँ हुईं। हिंदी का यह रूप गोलकुंडा, हैदराबाद, औरंगाबाद, गुलबर्गा, बीजापुर आदि क्षेत्रों में आज भी प्रचलित है।

3. **आधुनिक काल**– यह काल सन् 1800 से आज तक माना जाता है।

इस काल में ब्रज और अवधी में साहित्य की रचना क्रमशः कम होने लगी तथा खड़ी बोली साहित्य की रचना का माध्यम बनने लगी। गद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली के साहित्यिक रूप के विकास का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चंद्र को जाता है। उन्होंने हिंदी के इस विकास

को "हिंदी नई चाल में ढली" कहा। यह नई चाल की हिंदी लगभग वही है जिसे आज हम लिखते और पढ़ते हैं। समय के साथ-साथ इसका स्वरूप भी निखरता गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे एक निश्चित रूप देने में बहुत बड़ा योगदान दिया। वे ***सरस्वती*** पत्रिका के सम्पादक थे। इस पत्रिका में छपने वाली रचनाओं की भाषा को वे व्याकरणिक दृष्टि से सुधार कर ही छापते थे। इससे हिंदी का एक स्पष्ट स्वरूप निश्चित होने लगा।

इसी समय छायावादी काव्यधारा भी हिंदी में स्थिर होने लगी। इसने हिंदी भाषा का साहित्यिक संस्कार किया। छायावादी कवियों द्वारा संस्कृत शब्दों के प्रयोग से खड़ी बोली का रूप सँवरा-निखरा। अपने गद्य लेखन द्वारा रामचंद्र शुक्ल, मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद आदि साहित्यकारों ने हिंदी को और भी विकसित किया।

इन्हीं दिनों सामाजिक एवं धार्मिक सुधार, सांस्कृतिक आंदोलन, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष, राष्ट्रीय भावना का उदय और प्रसार आदि अनेक रूपों में नई चेतना उत्पन्न हो रही थी। इसके साथ एक ऐसी भाषा की आवश्यकता महसूस की गई जो अखिल भारतीय स्तर पर परस्पर विचार-विनिमय, संपर्क और जन शिक्षा के प्रसार का उपयुक्त माध्यम बन सके। यह गुण हिंदी में पाया गया।

इसी गुण के कारण आधुनिक काल में बंगाल के केशवचंद्र सेन, महाराष्ट्र के बालगंगाधर तिलक, गुजरात के स्वामी दयानंद और महात्मा गांधी आदि महापुरुषों ने इसे "राष्ट्रभाषा" के लिए उपयुक्त माना। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान यह समूचे देश की भाषा बनी। इसी भाषा के माध्यम से स्वतंत्रता-सेनानियों ने देश की जनता को प्रेरणा दी। उसमें राष्ट्रीय चेतना जगाई। अब हिंदी केवल साहित्य की भाषा ही नहीं रही, बल्कि समग्र जीवन की वाणी बन गई। मुद्रण-व्यवस्था, अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार, रेडियो-दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार आदि ने हिंदी को भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में और भी विस्तार दिया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानविकी आदि क्षेत्रों का तेज़ी से विकास हुआ। इन क्षेत्रों में नए विचार भी

आए। तब हमें हिंदी को इस रूप में विकसित करना था कि नया ज्ञान देश के कोने-कोने तक सरलता व सहजता से पहुँच सके। इसी तरह स्वतंत्र भारत में हिंदी का प्रयोग प्रशासन, बैंकिंग, विधि आदि क्षेत्रों में भी करना था। इन सामाजिक दायित्वों को पूरा करने वाली हिंदी को "राजभाषा" कहा गया। हिंदी ने इन दायित्वों को सफलता से पूरा भी किया है। इसकी पारिभाषिक शब्दावली का विकास और इन क्षेत्रों में इसका प्रयोग इस बात को प्रमाणित करता है।

हिंदी का स्वरूप और क्षेत्र

आपने देखा कि खड़ी बोली आज मानक हिंदी के रूप में अपने सीमित क्षेत्र से निकलकर पूरे भारत में फैल गयी है। इस प्रकार हिंदी आज एक अखिल भारतीय रूप प्राप्त कर चुकी है। इसके अखिल भारतीय स्वरूप को सँवारने और निखारने में इसकी बोलियों के सहयोग के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं का योगदान भी कम नहीं है। तभी आज इसका प्रयोग विभिन्न प्रयोगों और कार्यक्रमों में संभव हो सका है। इन कार्य-क्षेत्रों में इसके भिन्न-भिन्न रूप प्रयुक्त होते हैं।

हिंदी की शैलियाँ

हिंदी के विकास में संस्कृत और अरबी-फारसी की विशेष भूमिका रही है। इसी कारण हिंदी के तीन शैली-रूप उभर कर आए। ये तीन रूप हैं–

1. संस्कृतनिष्ठ हिंदी
2. अरबी-फारसी मिश्रित हिंदी
3. सामान्य बोलचाल की हिंदी

संस्कृतनिष्ठ हिंदी में अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्द होते हैं जैसे– "रोगी के उपचार के लिए हमें अत्यंत सावधान रहना चाहिए।" अरबी-फारसी से मिश्रित हिंदी में अरबी-फारसी भाषाओं के शब्दों का अधिक प्रयोग होता है। उपर्युक्त वाक्य को ऐसी शैली में इस प्रकार कहा जा सकता है– "बीमार के इलाज में हमें बहुत एहतियात बरतनी चाहिए"। अगर इस वाक्य को अरबी-फारसी लिपि में लिखा

जाए तो यह उर्दू का वाक्य कहलाएगा। सामान्य बोलचाल की हिंदी में संस्कृत और अरबी-फारसी भाषाओं के तद्भव शब्द काज (कार्य), काम (कर्म), बऱफ (बर्फ), गरम (गर्म) आदि मुख्य रूप से मिलते हैं। इधर अंग्रेजी के प्रभाव से हिंदी की एक अन्य शैली का विकास हो रहा है। इसका प्रयोग अधिकतर अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग करते हैं। हिंदी वाक्यों के साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करना या हिंदी का एक वाक्य बोलते-बोलते दूसरा वाक्य अंग्रेजी का बोल देना जैसे— ''बीमार के ट्रीटमेंट में हमें बहुत केअरफुल होना चाहिए।'' इसका तात्पर्य यह है कि हिंदी जिन भाषाओं के सम्पर्क में आई है उनके कई शब्द उसने आत्मसात कर लिए हैं। हिंदी की इस प्रकृति के कारण ही विभिन्न नगरों में भी इसके कई रूप उभर कर आए हैं जैसे— बम्बइया हिंदी, कलकतिया हिंदी आदि।

आधुनिक संदर्भ में हिंदी का स्वरूप

आधुनिक संदर्भ में हिंदी के तीन स्वरूप उभरते हैं—

1. भौगोलिक
2. साहित्यिक
3. प्रयोगमूलक

हिंदी के भौगोलिक स्वरूप पर तीन दृष्टियों से विचार किया जा सकता है— जनपदीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय। जनपदीय संदर्भ में हिंदी हिंदी-भाषी जनता की संस्कृति की वाणी है। हिंदी भाषी राज्यों के लोग अपने-अपने क्षेत्र में दैनिक व्यवहार में अपनी-अपनी बोलियाँ बोलते हैं। हिंदी उनकी मातृबोली है। इन बोलेयों के बीच संपर्क-सूत्र स्थापित करने का काम हिंदी करती है। इस विशाल क्षेत्र में अपने मानक रूप के कारण यह शिक्षा की माध्यम भाषा भी है। साक्षरता और शिक्षा के लिए सभी भाषा-भाषी खड़ी बोली हिंदी को ही अपनाते हैं। किंतु इसके साथ ही हिंदी का अपनी बोलियों तथा लोकजीवन और संस्कृति से घनिष्ठ संबंध भी बना रहता है।

दूसरी ओर, हिंदी समूचे राष्ट्र की वाणी है। यह हिंदी का राष्ट्रीय स्वरूप है। भारत की विभिन्न भाषाओं को बोलने वालों के बीच हिंदी

सम्पर्क भाषा का काम करती है। संघ की राजभाषा के रूप में संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार इसे स्वीकार किया गया (संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी)। इसी राष्ट्रीय-स्वरूप के विकास के लिए अनुच्छेद 351 में प्रावधान किया गया। यह भी ध्यान देने की बात है कि स्वाधीनता पूर्व हमारी आज़ादी की लड़ाई में राष्ट्रीय स्तर के नेताओं ने जनसम्पर्क के लिए इसी हिंदी का विकास किया था। आज संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी का यही संदर्भ सामने रखा गया। इस दृष्टि से हिंदी भारत की विभिन्न संस्कृतियों को अपने भीतर समेट रही है। यह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम हो गई है। अखिल भारतीय संपर्क की भाषा के रूप में भी आज हिंदी अखिल भारतीय स्वरूप धारण करती जा रही है। हिंदी अन्य भाषाओं से शब्द-सम्पदा और भाषिक प्रयोग ग्रहण करती हुई दिन-प्रतिदिन और भी सम्पन्न और समृद्ध होती जा रही है।

इसका तीसरा स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय है। हिंदी के इस रूप का प्रयोग भारत के बाहर कई देशों में हो रहा है। मॉरिशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना देशों में हिंदी भाषा का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में प्रयोग हो रहा है। यहाँ पर भारत के मूल निवासी अधिक संख्या में रहते हैं। अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, जापान आदि देशों में विदेशी भाषा के रूप में इसका अध्ययन-अध्यापन हो रहा है।

इस प्रकार हिंदी ने अपनी एक विशेष पहचान बना ली है। अपनी ऐतिहासिक परम्परा और सरल-सहज होने के कारण यह सारे भारत में ही नहीं, विश्वस्तर पर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

अब आप जान गए होंगे

1. ब्रज, अवधी, मैथिली, मगही आदि हिंदी की बोलियाँ हैं।
2. तुलसी ने अवधी में रचनाएँ कीं, सूर ने ब्रज में और विद्यापति ने मैथिली में।
3. ईरान में "स" का "ह" हो जाता है इसलिए "सिंधु" का "हिंदु" तथा बाद में 'हिंदू' हो गया।
4. "हिंदी" और "उर्दू" एक ही भाषा के दो नाम हैं। इन्हें अलग भाषाएँ बनाने का प्रयास अंग्रेजों ने किया। अंग्रेज हिंदू-मुसलमानों में फूट डालना चाहते थे।
5. हिंदी भाषा का इतिहास 1000 ई. से प्रारंभ होता है। हिंदी भाषा के विकास के तीन काल हैं— आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल।
6. आदिकाल का समय 1000 ई. से 1500 ई. है। इस काल में अपभ्रंश और प्राकृत भाषाओं का प्रभाव रहा। नाथों-सिद्धों ने इस काल में साहित्य रचा।
7. मध्यकाल का समय 1500 ई. से 1800 ई. है। इस काल में अपभ्रंश-प्राकृत से विकसित बोलियाँ प्रौढ़ हो गईं।
8. मध्यकाल में ही भाषा-बोली के मिश्रण से "सधुक्कड़ी" रूप का विकास हुआ। इसी रूप का प्रसार साधु-संतों ने पूरे भारत में किया।
9. आधुनिक काल का समय 1800 ई. से अब तक माना जाता है। इस काल में "खड़ी बोली" साहित्य का माध्यम बनी। इसके लिए भारतेंदु हरिश्चंद्र और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अथक प्रयास किया।
10. हिंदी के अखिल भारतीय स्वरूप को अहिंदी-भाषियों ने भी मान्यता दी। इन अहिंदी भाषियों में केशवचंद्र सेन, दयानंद, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी आदि प्रमुख हैं।

11. स्वतंत्र भारत में ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ हिंदी का प्रयोग-क्षेत्र विस्तृत हुआ। इस क्षेत्र में हिंदी ने अपना दायित्व सफलतापूर्वक निभाया।
12. एक सीमित क्षेत्र की खड़ी बोली हिंदी पूरे भारत में फैली। हिंदी भारतीय भाषाओं के बीच संपर्क भाषा है। साथ ही संघ की "राजभाषा" भी है। हिंदी का राजभाषा के रूप में प्रशासन, बैंक, विधि आदि क्षेत्रों में विकास हुआ।
13. हिंदी की तीन शैलियाँ हैं— संस्कृत मिश्रित हिंदी, अरबी-फारसी मिश्रित हिंदी और सामान्य बोलचाल की हिंदी।
14. सामान्य बोलचाल की हिंदी का पक्ष लेने वालों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद और महात्मा गांधी प्रमुख हैं।
15. हिन्दी के क्षेत्रीय संदर्भ में इसकी बोलियों का साहित्य इसमें समाहित है।
16. संविधान के अनुच्देद 343 में संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को माना गया है। अनुच्छेद 351 में इसके विकास का प्रावधान है।
17. राजभाषा के रूप में हिंदी, संस्कृत, अपनी बोलियों तथा अन्य भारतीय भाषाओं से आवश्यक और वांछित शब्दावली ग्रहण करती है। इस प्रकार हिन्दी भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है।
18. कुछ देशों में भारतीय मूल के निवासी रहते हैं। इन देशों में फ़ीजी, त्रिनिदाद, मॉरिशस आदि प्रमुख हैं। भारतीय मूल के ये लोग अपने सामाजिक और सास्कृतिक जीवन में सामान्यतः हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त अब हिंदी अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, फ्रांस आदि कई देशों में पढ़ाई जा रही है। यह हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ है।

भारतीय संस्कृति का स्वरूप

भारतीय संस्कृति का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसे जानने से पहले "संस्कृति" शब्द को समझना आवश्यक है। संस्कृति का सामान्य अर्थ है– मानव जीवन के दैनिक आचार-व्यवहार, रहन-सहन तथा क्रिया-कलाप आदि। वास्तव में संस्कृति का निर्माण एक लंबी परंपरा के बाद होता है। संस्कृति विचार और आचरण के वे नियम और मूल्य हैं जिन्हें कोई समाज अपने अतीत से प्राप्त करता है। इसलिए कहा जा सकता है कि इसे हम अपने अतीत से विरासत के रूप में प्राप्त करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो संस्कृति एक विशिष्ट जीवन शैली का नाम है। यह एक सामाजिक विरासत है जो परंपरा से चली आ रही होती है।

प्रायः सभ्यता और संस्कृति को एक ही मान लिया जाता है, परंतु इनमें भेद है। सभ्यता में मनुष्य के जीवन का भौतिक पक्ष प्रधान है। अर्थात् सभ्यता का अनुमान भौतिक सुख-सुविधाओं से लगाया जा सकता है। इसके विपरीत संस्कृति में आचार और विचार पक्ष की प्रधानता होती है। इस प्रकार सभ्यता को शरीर माना जा सकता है तथा संस्कृति को आत्मा। इसलिए इन दोनों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। वास्तव में दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इनका विकास भी साथ-साथ होता है अंतर केवल इतना है कि सभ्यता समय के साथ बदलती रहती है, किंतु संस्कृति शाश्वत रहती है।

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही अपना निश्चित स्वरूप ग्रहण कर चुकी है। यह कब और कैसे विकसित हुई– इसका निश्चित आधार उपलब्ध नहीं होता। प्राचीन ग्रंथों के आधार पर ही इसकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हड़प्पा-पूर्व संस्कृति तथा सिंधु घाटी की सभ्यता के विवरण से भी पता चलता है

कि उस समय भारतीय संस्कृति अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में थी। भारतीय संस्कृति को समझने के लिए इसे तीन भागों में बाँटकर देखा जा सकता है।

वैदिक काल

भारतीय संस्कृति के विकास का परिचय हमें वेदों से मिलने लगता है। वेद चार हैं— ***ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद*** तथा ***सामवेद***।अनुमान है कि वेद ईसा से कई हज़ार वर्ष पूर्व लिखे गए। हजारों वर्षों तक इनका पढ़ना-पढ़ाना मौखिक रूप से चलता रहा, इसलिए इन्हें ***श्रुति*** भी कहा जाता है। बाद में इनकी व्याख्या करने के लिए छह वेदांगों, ब्राह्मण ग्रंथों तथा उपनिषदों आदि की रचना की गई। उस समय के उपलब्ध साहित्य से पता चलता है कि उस युग में समाज चार वर्णों तथा चार आश्रमों में बँटा हुआ था। समाज के ये चार वर्ण थे— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन वर्णों का विभाजन कर्म के आधार पर था, जन्म के आधार पर नहीं। इसी प्रकार चार आश्रम थे— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इस काल में किसी प्रकार की धार्मिक, जातीय अथवा भाषाई संकीर्णता दिखाई नहीं देती। समय बीतने के साथ-साथ सामाजिक स्थिति में बदलाव आता गया। समाज में जाति-प्रथा का प्रचलन हुआ तथा अनेक प्रकार की बुराइयाँ जन्म लेने लगीं।

ऐसे समय में महावीर तथा गौतम बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने समाज में फैल रही इन बुराइयों को दूर करने के प्रयास किए। उन्होंने जैन एवं बौद्‌ध धर्मों के माध्यम से मानव-धर्म को स्थापित करने में अपना योग दिया और भारतीय संस्कृति को आगे बढ़ाया।

इस युग में अनेक विदेशी जातियों ने हमारे देश पर आक्रमण किए। इनमें यवन, शक, हूण, कुषाण आदि प्रमुख हैं। इनमें से अधिकांश पराजित होकर इस देश की जातियों में ही मिल गए। इंस समय की सबसे बड़ी घटना थी— सिकंदर का आक्रमण। इससे सामान्य जनजीवन संकट में पड़ गया। चाणक्य ने इस संकट को हमेशा के लिए समाप्त करने का प्रयास किया। उन्होंने चंद्रगुप्त मौर्य

चित्र 2.
1. सिकंदर द्वारा भारत पर आक्रमण, 2. राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास करते हुए चाणक्य, 3. सेना का नेतृत्व करते हुए चन्द्रगुप्त मौर्य।

की सहायता से एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण किया। उन्होंने राजनीति शास्त्र पर ***कौटिल्य का अर्थशास्त्र*** नामक ग्रंथ रचा।

चंद्रगुप्त मौर्य से लेकर सम्राट हर्षवर्धन तक का काल हमारे देश के इतिहास का सर्वोत्तम काल माना जाता है। इस काल के शासकों ने धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत, चित्रकला आदि में रुचि ली तथा इन्हें बढावा दिया। इसी समय दक्षिण में शंकराचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने "वेदान्त" नामक ग्रंथ की रचना की। उन्होंने पूरे भारत में पैदल यात्रा करके लोगों में सनातन धर्म का प्रचार किया।

मौर्य और गुप्तकाल में संस्कृत भाषा में महान साहित्य रचा गया। महाकवि कालिदास इसी युग में हुए। इसी समय गणित में "दशमलव प्रणाली" का जन्म हुआ। इस समय के सम्राटों ने कला और संगीत के विकास में विशेष रुचि ली। भारतीय तथा यूनानी कलाओं के मेल से कला की नवीन शैलियों ने जन्म लिया। संगीत के क्षेत्र में भी गायन तथा नृत्य की अनेक नई शैलियों का विकास हुआ।

मध्यकाल

इस काल में राजनीति, धर्म, दर्शन, समाज तथा साहित्य आदि क्षेत्रों में बहु आयामी विकास हुआ। इस्लाम धर्म के आने से एक नई संस्कृति ने जन्म लिया। मुहम्मद गौरी पहला आक्रमणकारी था जिसने मुस्लिम शासन की नींव डाली। हिंदू और मुसलमान शासकों में राज्य-विस्तार की होड़ लगी रहती थी। ऐसी अनस्थिर राजनैतिक स्थिति में बाबर ने मुगल साम्राज्य की स्थापना की। इसके बाद देश में राजनैतिक स्थिरता आई। इस समय समाज की स्थिति अच्छी नहीं थी। समाज अनेक जातियों और उपजातियों में बँट गया था। बाल-विवाह, दहेज-प्रथा जैसी बुराइयाँ समाज में पनपने लगी थीं। ज्ञान के स्थान पर अंधविश्वास जन्म ले रहे थे। बौद्ध और जैन धर्म अनेक शाखाओं और उपशाखाओं में बँट चुका था।

इस विषम परिस्थिति में विभिन्न प्रांतों के कुछ विचारक सामने आए। दक्षिण में आड्यार तथा आलवार भक्तों ने भक्ति-आंदोलन चलाया। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य जैसे आचार्यों ने उत्तर भारत की यात्रा की। उन्होंने स्थान-स्थान पर घूमकर जनता में व्याप्त बुराइयों का खंडन किया और जातिवाद जैसी बुराई को समाप्त करने का प्रयास किया।

स्वामी रामानंद ने ईश्वर के सगुण तथा निर्गुण रूपों की उपासना पर बल दिया। निर्गुण धारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी— दो शाखाएँ बनीं। सगुण धारा भी दो शाखाओं में बँट गई—रामभक्ति शाखा तथा कृष्णभक्ति शाखा। आगे चलकर तुलसीदास, सूरदास, नानक देव, रैदास, जायसी जैसे अनेक संतों और सूफी कवियों ने अपनी

लेखनी द्वारा भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया। इन संत एवं भक्त कवियों ने जात-पाँत के भेदभाव का खुलकर विरोध किया। समाज में फैली कर्मकांड जैसी बुराइयों पर प्रहार कर उनसे दूर रहने का प्रचार किया। सम्राट अकबर द्वारा "दीन-ए-इलाही" धर्म की स्थापना इसी युग में हुई। इसमें सभी जातियों एवं धर्मों के लोगों को समान महत्व दिया गया।

भक्ति का यह आंदोलन धीरे-धीरे पूरे भारत में फैल गया। तमिलनाडु में ***कम्ब रामायण,*** आंध्र प्रदेश में ***मुल्ल रामायण,*** बंगाल में ***कृतिवास रामायण*** आदि की रचना हुई। इसके साथ ही बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, पंजाब में गुरु नानक, राजस्थान में मीराबाई, महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर तथा दक्षिण में तिरुवल्लुवूर जैसे ज्ञानी संतों ने भारतीय संस्कृति को अपनी वाणी से सींचा। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता है– जनभाषा में साहित्य रचना। इस प्रकार के साहित्य ने जनता को बहुत अधिक प्रभावित किया।

आधुनिक काल

भारतीय संस्कृति के इस काल-खंड का आरंभ 18 वीं शताब्दी में माना जाता है। इस समय तक मुगल-साम्राज्य समाप्ति पर था। इसी समय देश में अंग्रेजों का आगमन हुआ। अपने शासन को चलाने के लिए उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा पर बल दिया। भारतीय सभ्यता और संस्कृति को विश्व-स्तर पर फैलाने में अंग्रेज विद्वानों तथा ईसाई मिशनरियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। यह काल भारत में "पुनर्जागरण का काल" कहलाता है। समाज में फैली बुराइयों, अंधविश्वासों को दूर करने में अनेक समाजसेवकों ने अभियान चलाए। बंगाल में राजा राममोहन राय ने इस कार्य में पहल की। उन्होंने सबसे पहले "ब्रह्म समाज" की स्थापना की। उनके इस प्रयास का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि पूरे देश में इस प्रकार के संगठनों का ताँता लग गया। महाराष्ट्र में "पूजा समाज" , उत्तर भारत में "आर्य समाज", दक्षिण में "थियोसोफिकल सोसाइटी" आदि संगठन इसी श्रृंखला की कड़ियाँ हैं। इसी समय भारतीय संस्कृति के मूल्यों को पुनः स्थापित करने में

महर्षि अरविंद तथा बाल गंगाधर तिलक ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। तिलक ने "गीता रहस्य" नामक पुस्तक लिखकर भारतीय समाज में "कर्म" के सिद्धांत का प्रचार किया।

राजनीति में महात्मा गांधी के प्रवेश से भारतीय इतिहास में नया अध्याय प्रारंभ हुआ। गांधी जी ने "सत्याग्रह" और "अहिंसा" जैसी नई विचारधारा को समाज में जन्म दिया। साथ ही उन्होंने सभी धर्मों को समान रूप से आदर देने की भावना का जन-जन में प्रचार किया। उनकी प्रार्थना-सभा में ***गीता, कुरान, बाइबिल, गुरुग्रंथ साहब*** आदि सभी का पाठ किया जाता था। इसके अतिरिक्त उन्होंने हरिजनों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान दिलाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। महिलाओं की स्थिति को सुधारने तथा उन्हें समाज में उचित सम्मान दिलाने का भरसक प्रयास किया। इन प्रयासों से सभी जातियों तथा सभी धर्मों के लोगों में एकता की भावना का संचार होना प्रारंभ हुआ। कर्म की पुनः प्रतिष्ठा करने पर बल दिया गया। देश के हिंदू, मुसलमान, ईसाई तथा सिखों ने एक साथ मिलकर भारत की मिली-जुली संस्कृति को एक नया रूप और आकार दिया।

भारतीय संविधान में जिन लोकतंत्र, समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों को स्वीकार किया गया, वे सिद्धांत प्रारंभ से ही हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं। वास्तव में इसका इतना लंबा और अखंड इतिहास ही इसे महत्वपूर्ण बनाता है। मिस्र, यूनान और रोम आदि देशों की संस्कृतियाँ आज केवल इतिहास बनकर सामने हैं, जबकि भारतीय संस्कृति एक लंबी ऐतिहासिक परंपरा के साथ आज भी निरंतर विकास के पथ पर है। इस विकास की प्रक्रिया में इसने कई अन्य संस्कृतियों को अपने में समेटा है। उनकी अच्छी बातों को ग्रहण करके उन्हें अपने रंग-रूप में ढाला है, जो आज भारतीय संस्कृति का ही अभिन्न अंग हैं। इस विकास की प्रक्रिया में भी इसने अपने प्रारंभिक स्वरूप अर्थात् "सामासिक संस्कृति" को बनाए रखा। अरबों, तुर्कों तथा मुगलों के द्वारा लाई गई इस्लामिक संस्कृति के गुणों को भी इसने आत्मसात कर लिया। यही बात भारत में यूरोपीय

जातियों के आगमन तथा ब्रिटिश साम्राज्य पर भी लागू होती है। भारतीय संस्कृति में वे सभी विचार, आचार, व्यवहार समाहित होते गए जिन्हें इस समाज ने उपयोगी समझा। अच्छे विचारों को ग्रहण करने में हम भारतीयों ने कभी परहेज किया ही नहीं। यही लचीलापन और सहनशीलता हमारी संस्कृति की विशेषता रही है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता रही है– "अनेकता में एकता"। यद्यपि ऊपरी तौर पर भारत के विभिन्न प्रदेशों में पर्याप्त भिन्नता दिखाई देती है तथापि अपने आचार-विचारों की एकता के कारण यहाँ सदा सामासिक संस्कृति का ही रूप देखने को मिलता है। यही कारण है कि इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत सदियों से एक भौगोलिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इकाई के रूप में विश्व में अपना स्थान बनाए हुए है। इसीलिए भारत में अनेकता में एकता के सदा ही दर्शन होते हैं। इस भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता और भौतिकता दोनों ही का मिश्रण रहा है। अतः इसकी प्राचीनता, इसकी गतिशीलता, इसका लचीलापन, इसकी ग्रहणशीलता, इसका सामाजिक स्वरूप और अनेकता के भीतर से दिखाई देने वाली एकता इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं के कारण ही भारतीय संस्कृति विश्व में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

अब आप जान गए होंगे

1. भारतीय संस्कृति का इतिहास बहुत प्राचीन है।
2. 'संस्कृति' का सामान्य अर्थ है– मानव के आचार-व्यवहार, नैतिक एवं सामाजिक मूल्य।
3. संस्कृति एक विशिष्ट जीवन-शैली है। यह एक सामाजिक विरासत है जो परंपरा से एक पीढ़ी से अगली को मिलती रही है।
4. सभ्यता और संस्कृति में अंतर है। 'सभ्यता' का संबंध जीवन की भौतिक सुख-सुविधाओं से है और 'संस्कृति' का चिंतन से।

5. यदि संस्कृति आत्मा है तो सभ्यता शरीर।
6. भारतीय संस्कृति को तीन कालों में बाँटा जा सकता है—
   1. वैदिक काल, 2. मध्य काल तथा 3. आधुनिक काल।
7. वेद ईसा से कई हज़ार वर्ष पूर्व लिखे गए थे।
8. वेदों की व्याख्या के लिए 6 वेदांगों, ब्राह्मण-ग्रंथों तथा उपनिषदों की रचना की गई।
9. वेदों का पढ़ना-पढ़ाना मौखिक रूप से चलता था, अतः इन्हें "श्रुति" भी कहा जाता है।
10. वैदिक काल में चार वर्णों और चार आश्रमों की व्यवस्था थी ये वर्ण जाति के आधार पर नहीं कार्य के आधार पर होते थे।
11. मध्यकाल राजनीतिक अस्थिरता का काल था। इस काल में विभिन्न प्रांतों के विचारकों और भक्तों ने भक्ति-आंदोलन द्वारा संस्कृति के विकास में अपना योगदान दिया।
12. भक्ति आंदोलन में दक्षिण के आड्यार तथा आलवार भक्त, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य तथा रामानंद महत्वपूर्ण हैं।
13. आधुनिक काल का आरंभ 18वीं शताब्दी से माना जाता है।
14. भारतीय सभ्यता और संस्कृति को विश्व-स्तर पर फैलाने में अंग्रेज विद्वानों और ईसाई-मिशरियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा।
15. आधुनिक काल को भारत का "पुनर्जागरण काल" कहा जाता है।
16. ***अनेकता में एकता, प्राचीनता, लचीलापन, ग्रहणशीलता, आध्यात्मिकता*** और ***भौतिकता का समन्वय*** आदि भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं।
17. भारतीय संस्कृति एक सामासिक संस्कृति है।

खंड II
प्राचीन गौरव गरिमा
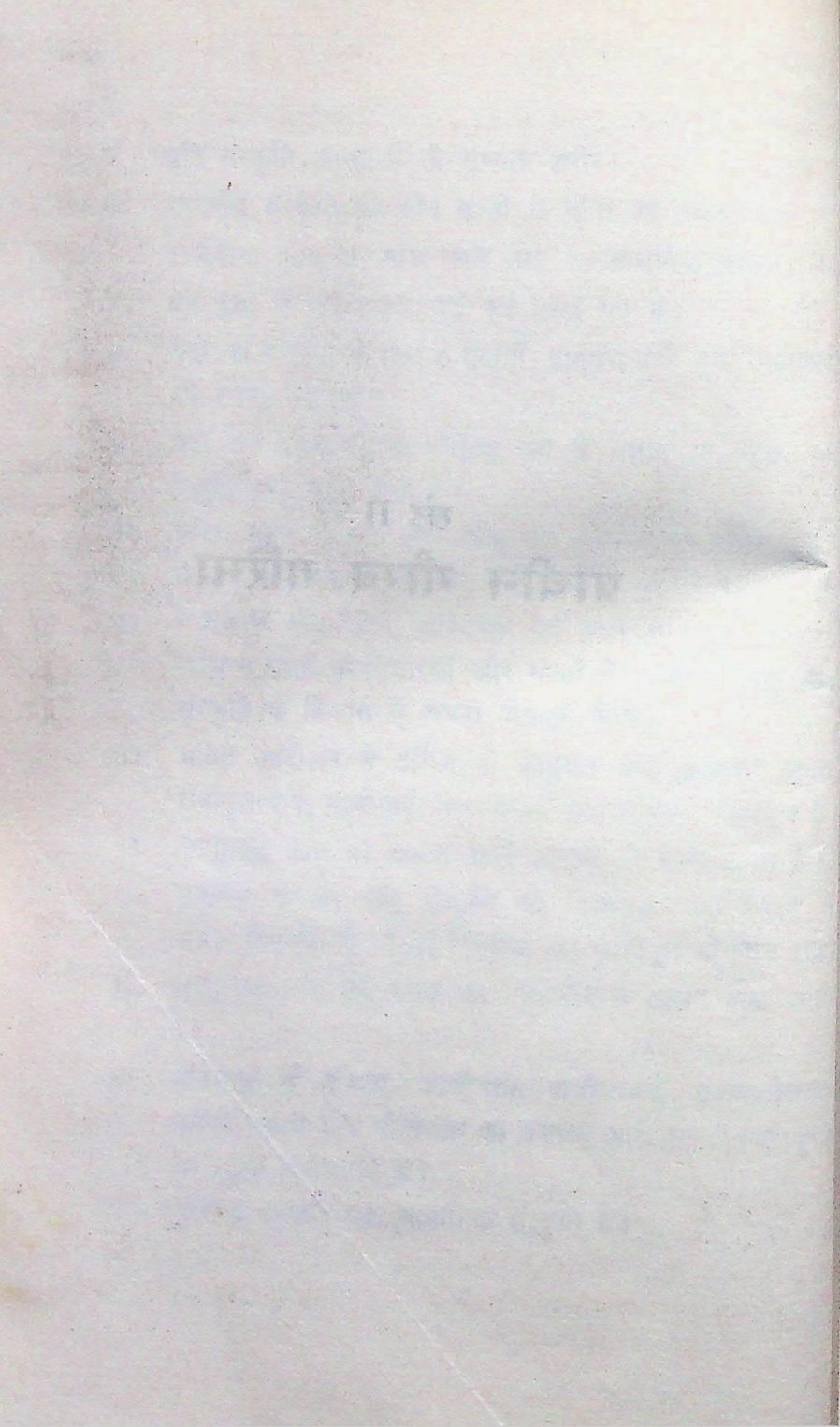
संत नामदेव : एक समाज सुधारक

महाराष्ट्र में एक स्थान है—पंढरपुर। पंढरपुर में दामाशेट नाम का एक शिंपी (दर्जी) था। उसकी पत्नी का नाम गोणाई था। उनके कोई संतान नहीं थी। एक दिन किसी ने गोणाई को सलाह दी कि यदि वह "विट्ठल" की मनौती करे और व्रत रखे तो उसे पुत्र प्राप्त होगा। तब से गोणाई विट्ठल का नाम जपने लगी। कुछ समय बाद 26 अक्तूबर, 1270 ई. को उसके एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम "नामदेव" रखा गया।

बचपन में ही नामदेव का विवाह श्रीगोविन्द शेटी सदावर्ते की पुत्री राजाई से हो गया। उनके पाँच संतान हुईं—चार पुत्र और एक पुत्री। पुत्र थे—नारायण, महादेव, गोविंद और विट्ठल तथा पुत्री लिंबाई। पंढरपुर के मंदिर में विष्णु की एक मूर्ति है जिसके शीश पर शिवलिंग है। इसी मूर्ति का नाम विट्ठल है। नामदेव करताल बजाते हुए विट्ठल का भजन-कीर्तन करते थे। ये भजन "अभंग" नाम से जाने जाते हैं।

नामदेव अपने गुरु की खोज में आवंद्या-नागनाथ के मंदिर गए। वहाँ उन्होंने देखा कि मंदिर के पुजारी विसोबा खेचर मंदिर में ही सो रहे थे। नामदेव यह देखकर चकित हुए। उन्होंने विसोबा से कहा—"मंदिर सोने की जगह नहीं है। यहाँ भगवान का निवास रहता है।" यह सुनकर विसोबा ने कहा— "भगवान सब जगह है। ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहाँ भगवान न हो।" इस घटना से नामदेव के जीवन की दिशा ही बदल गई। उन्होंने विसोबा खेचर को अपना गुरु मान लिया और उनके उपदेशों को समाज में फैलाया।

नामदेव के मन में मनुष्य के लिए ही नहीं, पशु-पक्षियों के प्रति भी करुणा और संवेदना थी। कहते हैं कि एक बार नामदेव खाना खा

रहे थे तभी एक कुत्ता उनकी थाली से एक रोटी मुँह में दबाकर भागने लगा। तुरंत नामदेव भी अपने हाथ में घी की कटोरी लेकर कुत्ते के पीछे भागे और कहते रहे– "अरे भाई, सूखी रोटी मत खाओ। पेट में चुभन पैदा होगी। यह घी ले लो। इससे रोटी चिकनी और नरम हो जाएगी।"

नामदेव ने अनेक स्थानों की यात्राएँ कीं और सीधे-सरल शब्दों में अपनी बात लोगों तक पहुँचाई। बीकानेर की यात्रा के समय वे एक गाँव में गए, जिसका नाम है कोलादजी। उस गाँव में पानी की बहुत कमी थी। एक कुएँ में पानी बहुत गहरा था। वह भी बहुत गंदा और खारा। लोग उसे पी नहीं सकते थे। चारों ओर पानी के बिना हाहाकार मचा था। नामदेव ने जब इस कष्ट को देखा तो वे वहीं पर तप और साधना करने लगे। कहा जाता है कि कुछ दिनों के बाद कुएँ का पानी ऊपर आ गया और वह मीठा भी हो गया। इस घटना से चारों ओर नामदेव की जय-जयकार होने लगी। समाज में वे एक "दिव्य-पुरुष" की भाँति पूज्य हो गए। आज भी उस गाँव में "नामदेव कूप" प्रसिद्ध है। वहाँ मेला भी लगता है।

नामदेव ने दक्षिण भारत की भी यात्रा की। वहाँ वे आवंढ्या के मंदिर पहुँचे। उस समय वहाँ कीर्तन चल रहा था। तब जाति-पाँति का बड़ा भेद माना जाता था। नामदेव दर्जी जाति के थे, अतः उन्हें मंदिर के सामने से भगा दिया गया। नामदेव मंदिर के पीछे बैठ गए और भगवान से पूछने लगे– "आप के दरबार में ऊँच-नीच, अवर्ण-सवर्ण का भेदभाव कैसे हो रहा है? मानव-मानव में भेद। यह अनोखी रीति कैसे चल रही है? समाज के इस ढकोसले को दूर करने की शक्ति दो भगवन !" लोग मानते हैं कि इस पर आवंढ्या के मंदिर का मुख्य द्वार ही उनकी ओर घूम गया था। आज भी यह मंदिर पश्चिममुखी है जबकि अन्य सभी मन्दिरों के द्वार पूर्वमुखी हैं। मुख्य द्वार की दिशा बदल जाने वाली बात शायद एक चमत्कार हो सकती है, पर इस घटना से यह तो पता चलता ही है कि नामदेव ने सामाजिक बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया।

नामदेव के समय में शिक्षा का प्रचार बहुत कम था। वे घूम-घूमकर

समाज में ज्ञान की अलख जगाते रहे। उनके सभी अभंग (पद) मौखिक परम्परा में गाए जाते रहे और लोगों में खूब प्रचलित हुए। नामदेव ने अपनी पहली तीर्थयात्रा संत ज्ञानदेव के साथ की थी। उनकी दूसरी तीर्थ यात्रा ज्ञानदेव के मरने के बाद हुई। इस यात्रा में महाराष्ट्र के ये संत मथुरा, हरिद्वार और पंजाब तक पहुँच गए। वे सबसे पहले अमृतसर जिले के भूतपिंड गाँव में पहुँचे। फिर गुरदासपुर जिले के मरड गाँव गए। वहाँ भट्टीवाल में उन्होंने अपना आश्रम बनाया। वहाँ का "नाभियाना तालाब" आज भी उनके नाम की याद दिलाता है। सुषीवाल और धारीवाल गाँव में वे अपने शिष्य लद्ढा तथा जल्ला के साथ रहे। पंजाब में नामदेव लगभग बीस वर्ष रहे। सिक्खों के "आदि ग्रंथ" में भी उनका सादर उल्लेख हुआ है। उनके कुछ अभंग ***आदि ग्रंथ*** में सम्मिलित हैं।

दिल्ली के बादशाह आलम उर्फ अलाउद्दीन उनसे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने एक मंदिर बनाने के लिए अपने खजाने से उन्हें कुछ धनराशि भी दान में दी थी।

जीवन के आखिरी समय में नामदेव धीमान गाँव गए। वहाँ केशो नाम का उनका प्रसिद्ध शिष्य रहता था। धीमान गाँव में संत नामदेव का स्मारक भी बना हुआ है। इस मंदिर में उनके रचे अभंगों का पाठ सदा होता रहता है।

नामदेव ने महाराष्ट्र में "वारकरी-पंथ" की स्थापना की। इसमें आषाढ़ और कार्तिक महीने की एकादशी को नित्य नियम से पंढरपुर की यात्रा होती है। यात्रा करने वाला ही "वारकरी" कहलाता है।

नामदेव ने जाति-भेद और छुआछूत के भेदभाव को समाज से मिटाने का प्रयास किया। उन्होंने जाति से अधिक वैष्णव भक्ति और नाम-स्मरण को महत्व दिया था। उनके एक अभंग का भाव इस प्रकार है—

गंदी जमीन पर तुलसी उगी, उसे अपवित्र नहीं कहते।
काक-विष्ठा में से पीपल जन्मा, उसे अमंगल नहीं कहते।
दासी के पुत्र को राज पद मिला, पीछे की उपमा नहीं देते।
नामा कहता जाति का मैं शिंपी, जाति की उपमा नहीं देते।

उनके जीवन की एक प्रसिद्ध घटना है—

चोखोबा नाम का एक अछूत था। एक बार वह नामदेव के पास आया। नामदेव ने उसे प्यार से पास बिठाया और सिर पर हाथ फेरते हुए ज्ञान दीक्षा दी। वही चोखोबा एक दीवार के गिरने से मर गया। तब नामदेव ने स्वयं उसकी हड्डियाँ इकट्ठी करके पंढरपुर मंदिर के सामने रखकर उसका स्मारक बनवाया।

नामदेव समाज में व्याप्त रूढ़ियों के खोखलेपन को जानते थे। किसी की पूजा-उपासना से उनका कोई विरोध न था। वे तो उस देवता को मानते थे जो मंदिर-मस्जिद में ही नहीं बल्कि सर्वत्र सबके मन-मंदिर में रहता है—

हिंदु पूजे देवरा, मुसलमान मसीद।
नामे सोई सेविआ, यह देहुरा न मसीद।

नामदेव कहते थे कि भगवान की प्राप्ति के लिए भक्त के हृदय में "लौ" लगनी चाहिए। इसके लिए उसे बड़े-बड़े ग्रंथ पढ़ने की आवश्यकता नहीं। सबमें समान भाव से दया रखकर ईश्वर की भक्ति कीजिए तो स्वयं ही मोक्ष मिल जाएगा।

नामदेव अपने जीवन के अंतिम समय में पंजाब से पंढरपुर आ गए थे। वहीं पर 80 वर्ष की आयु में, सन् 1350 ई. में उनका देहांत हो गया। पंढरपुर में ही उनकी समाधि बनी हुई है। आगे चलकर रामानंद, कबीर, गुरु नानक, रैदास, पीपा आदि संतों ने उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण किया। सच है कि नामदेव जैसे संतों ने ही गाँव-गाँव में घूमकर समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों को दूर किया। सच्चे अर्थों में वे एक समाज सुधारक थे।

बोध प्रश्न

1. नामदेव का जन्म कहाँ हुआ ?
2. अभंग किसे कहते हैं ?
3. किस घटना ने नामदेव के जीवन की दिशा बदल दी ?
4. नामदेव के जीवन से जुड़ी कोई चमत्कारी घटना सुनाइए।
5. नामदेव की मृत्यु कब और कहाँ हुई थी ?

6. कोई ऐसी घटना बताइए जिससे पता चले कि नामदेव छुआछूत और जात-पाँत का भेदभाव नहीं मानते थे।
7. ***आदिग्रंथ*** किसे कहते हैं ? नामदेव का नाम उससे क्यों जुड़ा है ?

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
कुप्रथा	बुरा चलन, बुरे रीति-रिवाज
अभंग	नामदेव के गाए गए पदों का नाम
समभाव	समान विचार, सब को समान समझना
कूप	कुआँ
पूर्वमुखी	जिसका मुँह पूर्व दिशा की ओर हो
पश्चिममुखी	जिसका मुँह पश्चिम दिशा की ओर हो
आदिग्रंथ	सिखों की धर्म पुस्तक : ***गुरुग्रंथ साहिब***
काक-विष्ठा	कौवे का मल
दिव्य पुरुष	महान प्रतिभाशाली, देवताओं के समान गुणों वाला मनुष्य

भारतीय चिकित्सा-विज्ञान

बच्चो, मनुष्य की सदा ही यह इच्छा रही है कि वह स्वस्थ रहे। कहा भी गया है– "पहला सुख निरोगी काया"। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भारत में प्राचीन काल से ही आयुर्वेद पर बल दिया गया है। आयुर्वेद ज्ञान की एक ऐसी शाखा है, जो शरीर और मस्तिष्क दोनों को आधार बनाकर चल ी है। "आयुर्वेद" दो शब्दों से मिलकर बना है– आयुस् तथा वेद। "आयुस्" का अर्थ है– जीवनी तथा "वेद" का अर्थ है– ज्ञान। इस प्रकार जीवन को जानने की विद्या को 'आयुर्वेद' कहा जाता है।

हमारे देश में इस चिकित्सा-पद्धति की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। इसका उल्लेख वेदों तथा पुराणों में भी मिलता है। देवताओं के वैद्य अश्विनी कुमारों के चिकित्सा-कौशल के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। एक कहानी के अनुसार उन्होंने वृद्ध च्यवन ऋषि को नई शक्ति प्रदान की थी। आजकल की प्रसिद्ध शक्तिवर्धक औषध "च्यवनप्राश" के नाम का आधार यही कथा मानी जाती है। गणेश के कटे हुए सिर के स्थान पर हाथी का सिर लगा देने की कथा भी पुराणों में मिलती है जो शल्य-चिकित्सा का अद्भुत उदाहरण है।

इतिहास में आयुर्वेद का उल्लेख तक्षशिला विश्वविद्यालय के संदर्भ में मिलता है। तक्षशिला विद्या का एक बड़ा केंद्र था। वहाँ साहित्य, कला, व्याकरण, धनुर्विद्या, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, न्याय, तर्क आदि की शिक्षा दी जाती थी। वहाँ आचार्य पुनर्वसु आयुर्वेदशास्त्र पढ़ाते थ।

चित्र 3. भारतीय चिकित्सा विज्ञान →

1. राजा कनिष्क के काल में मस्तिष्क चिकित्सा, 2. राजा कनिष्क, 3. आचार्य आत्रेय व पुनर्वसु के उपदेशों का संग्रह करते हुए उनके शिष्य अग्निवेश, 4. कनिष्क काल में ही विकसित आयुर्वेद शास्त्र *सुश्रुत संहिता*।
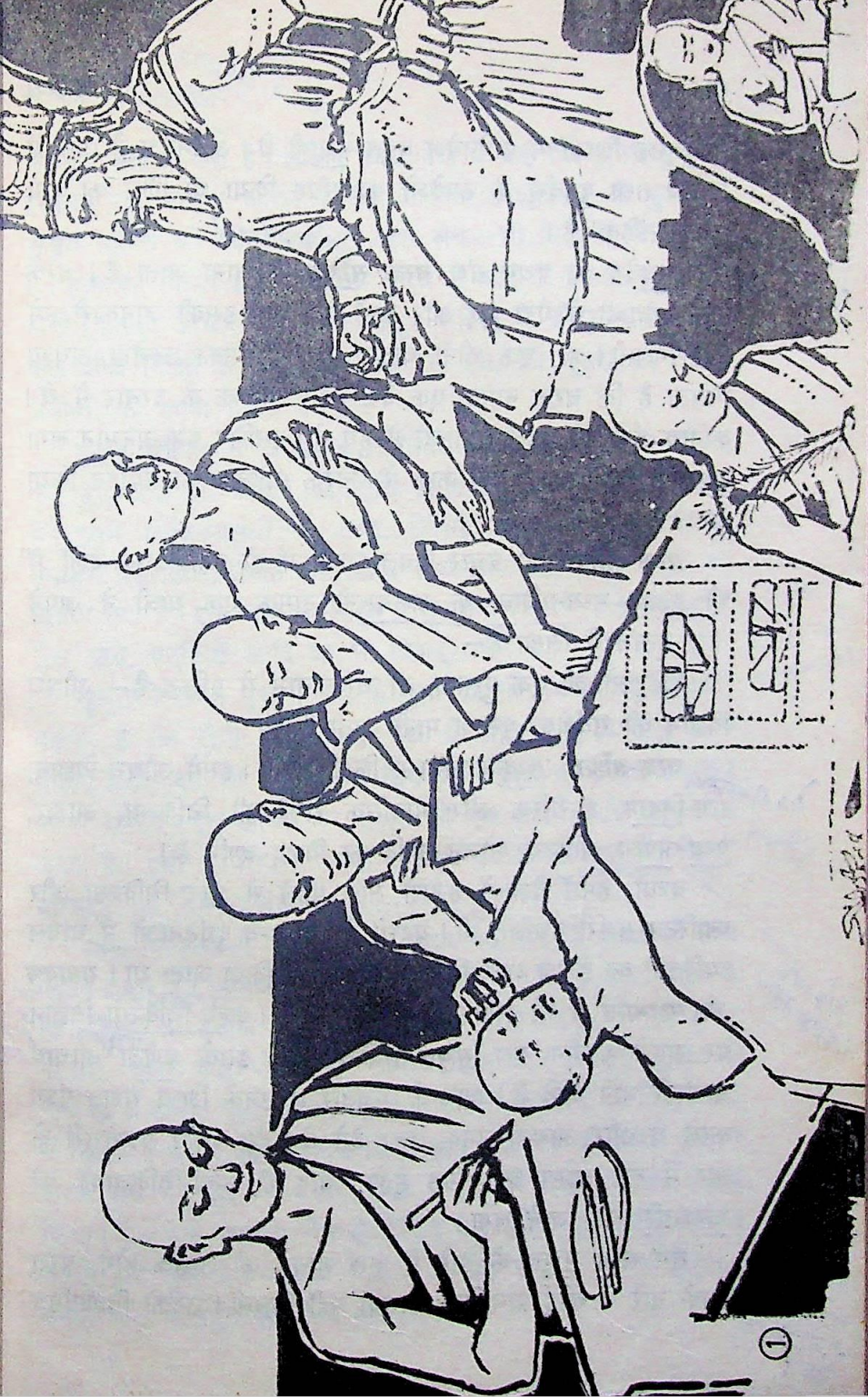
उनके छह शिष्यों में अग्निवेश बहुत मेधावी थे। अग्निवेश ने आचार्य आत्रेय तथा पुनर्वसु के उपदेशों का संग्रह किया था जिस का नाम 'चरक संहिता' है।

आयुर्वेद का प्रथम ग्रंथ **चरक संहिता** ही माना जाता है। चरक किस शताब्दी में पैदा हुए और कहाँ पैदा हुए, इसकी जानकारी हमें नहीं मिलती। हाँ, एक चीनी बौद्ध ग्रंथ में इसका उल्लेख अवश्य मिलता है कि चरक नामक एक वैद्य राजा कनिष्क के दरबार में थे। कनिष्क ईसा की पहली शताब्दी में हुए थे। इसलिए हम अनुमान लगा सकते हैं कि चरक ने इसी काल में "चरक संहिता" का संपादन किया होगा।

चरक संहिता का प्रचार केवल भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी हुआ। मध्य-एशिया के अलबरूनी नामक एक यात्री ने अपने यात्रा-वृतांत में लिखा है—

"हिंदुओं की एक पुस्तक, जो चरक नाम से प्रसिद्ध है— औषध विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है।"

चरक-संहिता संस्कृत भाषा में लिखी गई है। इसमें औषध-विज्ञान, रोग-निदान, शारीरिक और मानसिक रोगों की चिकित्सा, आहार, पथ्य-अपथ्य, पौष्टिक भोजन आदि का विशद् वर्णन है।

बच्चो, हमारे देश में हजारों साल पहले से शल्य-चिकित्सा और प्लास्टिक-सर्जरी प्रचलित थी। युद्धों में या अन्य दुर्घटनाओं में घायल व्यक्तियों का इलाज शल्य-चिकित्सा द्वारा ही किया जाता था। **रामायण** और **महाभारत** में भी इसका उल्लेख मिलता है। शल्य-चिकित्सा विज्ञान पर सबसे प्राचीन ग्रंथ **सुश्रुत संहिता** है। इसके प्रणेता आचार्य धन्वंतरि माने जाते हैं। आचार्य धन्वंतरि से उनके शिष्य सुश्रुत प्रश्न करते थे और आचार्य उनके उत्तर देते थे। इस प्रकार प्रश्नोत्तरी के रूप में इस शास्त्र का संग्रह हुआ। बाद में शल्य-चिकित्सकों को 'धन्वंतरि' कहा जाने लगा।

तुम लोग सुश्रुत के बारे में कुछ जानने को उत्सुक होगे, परंतु उनके बारे में कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं मिलती। उनको विश्वामित्र

का पुत्र बताया गया है। लेकिन हमारे देश में कई विश्वामित्र हुए हैं, इसलिए यह बताना कठिन है कि वे किस विश्वामित्र के पुत्र थे। **सुश्रुत संहिता** की रचना कब हुई, इसे लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ का विचार है कि महात्मा बुद्ध के बाद ही इसकी रचना हुई होगी। इसका आधार यह है कि सुश्रुत संहिता में बौद्ध धर्म संबंधी कुछ शब्द मिलते हैं। कुछ विद्वान इसे ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी की रचना मानते हैं।

सुश्रुत संहिता में शरीर के अवयवों की चीर-फाड़, शव-परीक्षा, कटे हुए अंगों को जोड़ने की विधि आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें चिकित्सालयों के प्रबंध, रोगियों के खान-पान, यंत्रों के उपयोग की विधि, उनके रख-रखाव तथा साफ-सफाई का महत्व भी बताया गया है। इस चिकित्सा-शास्त्र में उपयोग में आने वाले उपकरणों, जैसे धागे, पट्टियों आदि का भी विशद् वर्णन है।

सुश्रुत ने अपने ग्रंथ में वैद्य के गुणों की भी चर्चा की है। उन्होंने बताया है कि रोगी के मन में वैद्य के प्रति पूर्ण विश्वास होना चाहिए। वैद्य को भी रोगियों के साथ अपने पुत्र के समान व्यवहार करना चाहिए। इस आधार पर सुश्रुत को एक महान चिकित्सक माना जाता है। इसी परंपरा में अनेक प्रसिद्ध चिकित्सक हुए हैं, जिनमें वाग्भट्ट का नाम उल्लेखनीय है।

शल्य-चिकित्सा में कौमार भृत्य जीवक का नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। जीवक राजगृह के निवासी थे। ऐसा माना जाता है कि जीवक को उनकी माता ने त्याग दिया था। राजगृह के राजकुमार ने उसे लाकर पाला-पोसा और आश्रय दिया था। इसलिए कुमार के नाम से वे कौमार भृत्य जीवक कहलाए। उन्होंने तक्षशिला के विद्या-केंद्र में चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन किया था। सात वर्ष की शिक्षा समाप्त करके जब वे लौट रहे थे तो रास्ते में उन्होंने एक सेठ का इलाज किया। सेठ एक असाध्य रोग से पीड़ित थे। अनेक वैद्य उनका इलाज करके हार चुके थे। जीवक ने सेठ को इस रोग से मुक्ति दिलाई। इसके बाद वे बहुत लोकप्रिय हो गए।

जीवक के संबंध में बौद्ध धर्म के ग्रंथों में कई रोचक घटनाएँ मिलती हैं। उस काल में मगध के राजा बिंबसार भगंदर की बीमारी से पीड़ित थे। जीवक ने एक सप्ताह में ही उनको पूर्ण स्वस्थ कर दिया था।

बच्चो, जीवक न केवल राजा-महाराजाओं की बीमारियों का इलाज करते थे, अपितु वे साधारण लोगों की चिकित्सा में भी उतनी ही रुचि लेते थे। उन्होंने धनिकों का इलाज करके जो धन कमाया, उसमें से तीन-चौथाई धन बौद्ध विहारों में चिकित्सालय चलाने के लिए दान दे दिया। इनकी प्रेरणा से बौद्ध भिक्षु चीन, जापान, मलेशिया, श्रीलंका आदि देशों में गए और अपने साथ भारत की इस चिकित्सा-पद्धति को भी ले गए। इस प्रकार इस चिकित्सा-पद्धति को पूरे विश्व में लोकप्रिय बना दिया।

प्रसन्नता की बात है कि आज विदेशों में भी आयुर्वेद विशेष रूप से लोकप्रिय हो रहा है। आज जो दवाइयाँ बनाई जा रही हैं, उनमें अधिकांश हमारे देश में उपलब्ध जड़ी-बूटियों से ही बनाई जाती हैं। इस पद्धति की उपयोगिता को देखते हुए हमें इसे निरन्तर बढ़ावा देना चाहिए।

बोध-प्रश्न

1. भारत की प्राचीन चिकित्सा-पद्धति का नाम और आधार क्या है ?
2. **चरक संहिता** की रचना किस विधि से हुई है ?
3. **चरक संहिता** में किन विषयों का वर्णन किया गया है?
4. **सुश्रुत संहिता** का निर्माण कैसे हुआ ?
5. सुश्रुत कौन थे ? आयुर्वेद विज्ञान में उनका क्या योगदान है ?
6. सुश्रुत संहिता में वैद्य के क्या-क्या गुण बताये गये हैं ?
7. कौमार भृत्य जीवक की प्रसिद्धि के कारण बताइए।
8. "बौद्ध-विहारों" के लिए जीवक ने क्या किया ?
9. आयुर्वेद विज्ञान की चिकित्सा पद्धति पर निबंध लिखिए।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
पारलौकिक	परलोक संबंधी
धनुर्विद्या	बाण-विद्या, धनुष चलाने की विद्या
यात्रा-वृतांत	यात्रा वर्णन
रोग-निदान	रोग की पहचान
चिकित्सा-कौशल	इलाज या उपचार करने की निपुणता
विशद् वर्णन	व्यापक, विस्तार के साथ वर्णन
शल्य-चिकित्सा	चीर-फाड़ करके किया जाने वाला इलाज (ऑपरेशन)
प्रणेता	रचयिता, लेखक
विधि	पद्धति, रीति
जटिल	कठिन, असाध्य
चिकित्सालय	अस्पताल

कवि-कुल-गुरु कालिदास

बहुत समय पहले की बात है। एक राजा की एक विदुषी कन्या थी। उसका नाम था विद्योत्तमा। उसका जैसा नाम था, वैसे ही उसके गुण भी थे। उसने अपनी शादी के लिए एक शर्त रखी थी। शर्त यह थी कि जो भी व्यक्ति उसे शास्त्रार्थ में हरा देगा, उसी के साथ वह विवाह करेगी। कितने ही विद्वान पंडित आए, परंतु उसके ज्ञान के आगे न टिक सके। इस हार से दुखी कुछ पंडितों ने राजकुमारी के घमंड को चूर करने की योजना बनाई। एक दिन उन्हें एक युवक दिखाई दिया जो उसी डाल को काट रहा था जिस पर वह बैठा था। वे उस मूर्ख युवक को अपने साथ राजधानी ले आए। उन्होंने युवक को समझाया कि वे उसका विवाह एक राजकुमारी से करवाएँगे। शर्त यह है कि वह कुछ न बोले, केवल उँगलियों के इशारे से बात करे। उसने उनकी यह बात मान ली।

पंडित उसे सिखा-पढ़ा कर राजमहल ले गए। उन्होंने यह प्रचार किया कि काशी से एक महापंडित पधारे हैं, लेकिन इस समय उन्होंने मौन धारण किया हुआ है। वे राजकुमारी से केवल संकेतों में ही शास्त्रार्थ करेंगे। राजकुमारी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। सबसे पहले राजकुमारी ने एक उँगली उठाकर पूछा– "क्या ईश्वर एक है ?" युवक ने सोचा कि वह उसकी एक आँख फोड़ने का संकेत है। उसने दो उँगलियाँ उठाकर उत्तर दिया कि वह उसकी दोनों आँखें फोड़ देगा। पंडितों ने इसका अर्थ यह लगाया कि ईश्वर चाहे एक है पर उसके दो रूप हैं– निर्गुण तथा सगुण।

राजकुमारी ने फिर तीन उँगलियाँ उठाकर पूछा– "क्या गुण तीन प्रकार के होते हैं?" युवक ने इसके उत्तर में घूँसा दिखाया। इसका अर्थ पंडितों ने यह लगाया कि ये तीन गुण पंचतत्वों में ही समाहित हैं।

इस तरह शास्त्रार्थ चलता रहा और युवक के इशारों के अर्थ पंडित अपने-अपने तरीके से बताते रहे। अंत में राजकुमारी ने हार मान ली। शर्त के अनुसार उसका विवाह उस युवक से हो गया। विवाह के तुरंत बाद ही विद्योत्तमा यह भाँप गई कि उसके साथ धोखा हुआ है। उसका पति कोई प्रकांड पंडित न होकर गँवार और मूर्ख है। उसने अपने पति को बहुत बुरा-भला कहा। लज्जित होकर युवक ने उसी समय प्रण किया कि वह अपनी पत्नी का मुँह तभी देखेगा, जब वह भी उसकी तरह विद्वान बन जाएगा।

वह युवक घर से निकल गया और सीधे काशी पहुँचा। वहाँ रहकर उसने व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। कुछ ही वर्षों में वह महान पंडित बनकर घर लौटा। द्वार खटखटाकर उसने पत्नी को अपने आने की सूचना दी। विद्योत्तमा उसकी विद्वता से अभी अपरिचित थी, अतः उसने व्यंग्य से पूछा—

"अस्ति कश्चित् वाग्विशेष ?"

(क्या कोई विशेष बात है ?)

युवक ने कविता में ही इस प्रश्न का उत्तर देकर अपनी विद्वता का परिचय दिया।

जानते हो, यह युवक कौन था ? यह युवक था— कालिदास। वह अपनी काव्य प्रतिभा के कारण आज भी विश्व भर में जाना जाता है।

विद्योत्तमा ने जो प्रश्न पूछा था, उसके तीनों शब्दों से कालिदास ने तीन महान काव्य ग्रंथों की रचना की। ये तीन ग्रंथ थे— **कुमार संभव, मेघदूत,** तथा **रघुवंश।** कुमार संभव महाकाव्य का पहला शब्द "अस्ति" है, मेघदूत का "कश्चित्" तथा रघुवंश महाकाव्य का "वाग्"। इस प्रकार ये तीनों ग्रंथ लिखकर इन्होंने विद्योत्तमा के प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित की।

इस कथा में कितनी सच्चाई है— यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि कालिदास की रचनाओं में कहीं भी उनके जीवन, जन्म-स्थान, तिथि आदि के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। इस संबंध में इसीलिए विद्वानों में भी मतभेद है। कोई

चित्र 4. →
1. राजकुमारी विद्योत्तमा व कालिदास के बीच हुआ शास्त्रार्थ,
2. काशी में ज्ञान प्राप्त करते हुए कालिदास,
3. सुप्रसिद्ध काव्य ग्रंथ *मेघदूत*, 4. *कुमार संभव*, 5. *रघुवंश* व
6. *अभिज्ञान शाकुन्तलम्* का प्रणयन।

उन्हें उज्जायनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में गिनता है तो कुछ विद्वान इन्हें शुंगवंश के राजा अग्निमित्र का दरबारी कवि मानते हैं और कुछ इन्हें गुप्तवंश के महाराजा चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं।

बच्चो, कालिदास कहीं भी पैदा हुए हों, चाहे जिस काल में पैदा हुए हों, वे सभी स्थानों के हैं तथा हर युग के हैं। वे पूरे भारत में घूमे थे। वे हर स्थान के सौंदर्य में रमे थे, इसलिए उनके वर्णन बहुत सजीव और सुन्दर बन पड़े हैं। उन्होंने अपने पूरे जीवनकाल में चार काव्यग्रंथों तथा तीन प्रसिद्ध नाटकों की रचना की। उनके काव्यग्रंथ हैं—***ऋतुसंहार, मेघदूत, कुमार संभव*** तथा ***रघुवंश***। इसके अतिरिक्त उन्होंने ***अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्*** तथा ***विक्रमोर्वशीयम*** नाटक लिखे।

ऋतुसंहार उनकी सबसे पहली रचना है। इसमें उन्होंने छहों ऋतुओं का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। **कुमारसंभव** उनका प्रथम महाकाव्य है। यह शिव और पार्वती को आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें पार्वती शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए हिमालय पर तपस्या करती हैं और अंत में उन्हें सफलता मिल जाती है। विवाह के बाद इनके पुत्र स्कंद (कार्तिकेय) का जन्म होता है, जो बाद में देवताओं की ओर से तारकासुर से लड़ता है और उसे हरा देता है।

रघुवंश में कालिदास ने महाराज रघु के भारत विजय तथा राम के अयोध्या लौटने वाले महत्वपूर्ण वर्णन को आधार बनाया है। जहाँ ***कुमारसंभव*** गृहस्थ जीवन का प्रबल सर्मथन करता है, वहाँ **रघुवंश** राजाओं के आदर्श जीवन का प्रतिपादन करता है।

मेघदूत एक खंडकाव्य है। इसमें एक यक्ष की कथा है, जिसे

1
2
3
4
5
6

अपनी पत्नी से अलग रहकर एक वर्ष सज़ा काटनी पड़ती है। वह वर्षा ऋतु में मेघ को दूत बनाकर अपनी पत्नी के पास संदेश भेजता है। इसमें कालिदास ने विन्ध्याचल से हिमालय पर्वत के बीच आने वाले सभी विशिष्ट स्थानों तथा हिमालय में बसी अलकापुरी का मनोहर चित्रण किया है।

मालविकाग्निमित्रम् नाटक में शुंग राजा अग्निमित्र तथा विदर्भ की राजकुमारी मालविका के प्रेम का वर्णन है। अग्निमित्र की दो रानियाँ उनके प्रेम में बाधा डालती हैं, पर सफल नहीं होतीं। अंत में रानियाँ हार मान लेती हैं और मालविका का विवाह अग्निमित्र से हो जाता है।

विक्रमोर्वशीयम् नाटक में राजा पुरुरवा तथा अप्सरा उर्वशी की प्रेम-कथा का वर्णन है। इसकी कहानी ऋग्वेद से ली गई है, जिसका ब्राह्मण-ग्रंथों में भी उल्लेख है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास का सबसे प्रसिद्ध नाटक है। इसमें राजा दुष्यंत तथा विश्वामित्र की पुत्री शकुंतला के प्रेम-विवाह का वर्णन है। दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण दुष्यंत शकुन्तला को भूल जाता है, बाद में दोनों का मिलन होता है।

बच्चो, **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** कालिदास की अंतिम रचना है। इसके बाद वे कितने वर्ष तक जीवित रहे— यह बताना कठिन है। पीछे जिस दंतकथा का उल्लेख किया गया है, उसमें आगे यह कहा गया है कि कालिदास काशी से वापस आकर विद्योत्तमा को "माँ" कहने लगे थे। परंतु विद्योत्तमा तो उन्हें पति रूप में पाना चाहती थी। जब वह इस प्रयास में सफल नहीं हुई, तब उसने कालिदास को शाप दिया—

"तुमने मेरा दिल दुखाया है, इसलिए तुम्हारी
मृत्यु का कारण कोई स्त्री ही बनेगी।"

कहा जाता है कि एक बार कालिदास अपने मित्र सिंहल के राजकुमार कुमारदास से मिलने सिंहलद्वीप पहुँचे। कुमारदास ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। उसने उनके सम्मान में एक नर्तकी के नृत्य का आयोजन करवाया। नृत्य समाप्त होने पर कुमारदास ने एक श्लोक

की पहली पंक्ति पढ़ी और घोषणा करवाई कि जो इसकी दूसरी पंक्ति पूरी कर देगा, उसे इनाम मिलेगा। नर्तकी के मन में इनाम पाने की प्रबल इच्छा हुई। उसने कालिदास को अपने यहाँ भोजन पर बुलाया। बातों ही बातों में कालिदास से दूसरी पंक्ति पूरी करवा ली। पोल खुल जाने के भय से उसने कालिदास को जहर देकर मार डाला।

अगले दिन दरबार में जाकर नर्तकी ने श्लोक की दूसरी पंक्ति पूरी कर दी और इनाम जीत लिया। जानते हो, जब कुमारदास को नर्तकी की इस चाल का पता चला तो वे शोक से व्याकुल हो उठे। ऐसा कहा जाता है कि जब कालिदास की चिता में आग लगाई गई तो कुमारदास ने भी उसमें कूदकर प्राण दे दिए।

बच्चो, इस कथा में कितनी सच्चाई है– यह कहना कठिन है। लेकिन इससे इतना तो सिद्ध हो जाता है कि कालिदास सबको प्रिय थे। हर जगह उनका मान था। जो कुछ भी उन्होंने लिखा, वह अमर साहित्य बन गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि उन्होंने अपनी कृतियों में नई कथाएँ नहीं गढ़ीं। केवल उन्हीं का वर्णन किया जिन्हें उन्होंने अपने जीवन में देखा और सुना था। चाहे प्रकृति-चित्रण हो या मानवीय भावनाओं का वर्णन, पाठक उसमें रम जाता है। उनका काव्य सरल, सहज है, जिसमें बेजोड़ उपमाएँ भरी पड़ी हैं। यही कारण है कि उनकी गणना भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती है।

बोध-प्रश्न

1. विद्योत्तमा ने अपने विवाह की क्या शर्त रखी थी ?
2. पंडित मूर्ख युवक को अपने साथ क्यों ले गए ?
3. मूर्ख युवक को राजमहल ले जाकर पंडितों ने राजकुमारी से क्या कहा ?
4. युवक घर छोड़कर काशी क्यों चला गया ?
5. विद्योत्तमा के किन तीन शब्दों से कालिदास ने तीन काव्यग्रंथों की रचना की ?
6. कालिदास के तीन प्रसिद्ध नाटक कौन-कौन से हैं ?

7. विद्योत्तमा ने कालिदास को शाप क्यों दिया था ?
8. नर्तकी ने कालिदास को जहर देकर क्यों मार डाला ?
9. कालिदास को श्रेष्ठ रचनाकार क्यों माना जाता है ?
10. कालिदास के किसी नाटक की कहानी पढ़कर उसकी कथा पर अपनी कक्षा में चर्चा कीजिए।

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
विदुषी	विद्वान स्त्री
निर्गुण	गुण रहित, निराकार
सगुण	गुण सहित, साकार
समाहित	लीन, मिला हुआ, सम्मिलित
भाँपना	जान लेना
प्रकांड	उत्तम, श्रेष्ठ
समर्पित करना	देना, चढ़ाना, भेंट करना
समकालीन	उसी समय/ काल का
प्रतिपादन करना	ज्ञान कराना, प्रमाण सहित कहना
मनोहर	मन को लुभाने वाला
उल्लेख	वर्णन, चर्चा
प्रबल	बहुत अधिक
व्याकुल	बेचैन
गणना	गिनती
शास्त्रार्थ	शास्त्रों पर वाद-विवाद (विद्वानों की बहस)
महाकाव्य	बड़ी काव्य रचना, जिसमें किसी महापुरुष के पूरे जीवन का वर्णन हो।
खंडकाव्य	छोटी काव्य रचना, जिसमें किसी महापुरुष के जीवन के एक पक्ष का वर्णन हो।
दंतकथा	लोगों में प्रचलित कथा, जनश्रुति

सागर एक : सरिताएँ अनेक

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने भारत को "महामानवता का सागर" कहा है। सचमुच महासागर है यह ; जाति-धर्म, भाषा-साहित्य, कला-कौशल आदि की अनेक सरिताओं द्वारा समृद्ध महामानवता का सागर ! एक विद्वान के अनुसार भारत में कम-से-कम सात प्रकार की ऐसी मानव जातियाँ रहती हैं, जो शरीर-विज्ञान की दृष्टि से अलग-अलग हैं। संसार के प्रमुख धर्म हमारे देश में प्रचलित हैं। हिन्दू, बौद्ध, जैन, इस्लाम, सिक्ख, ईसाई, पारसी सभी धर्मों के मानने वाले यहाँ बसते
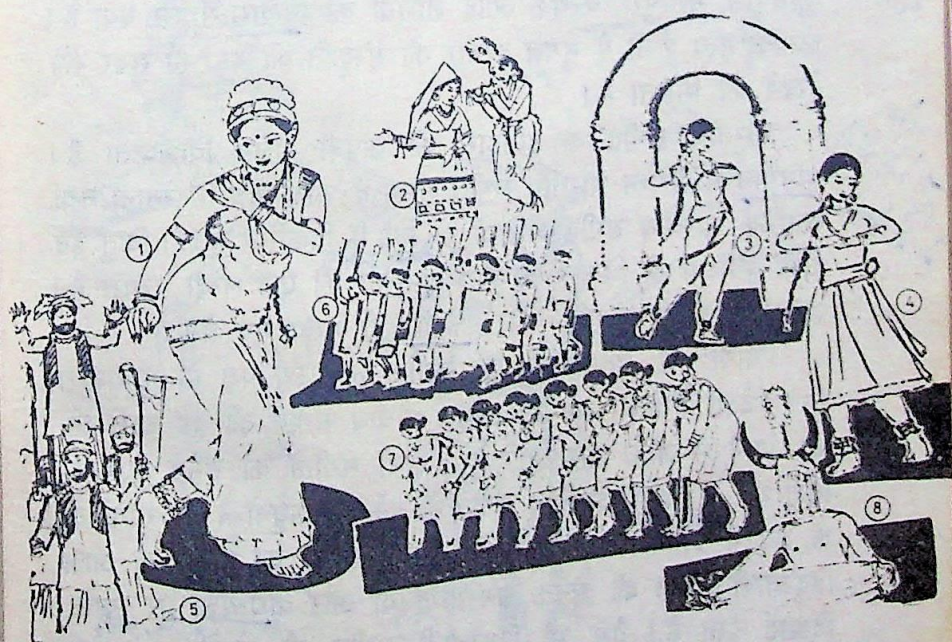
चित्र 5. हमारे भारतीय नृत्य— 1. भरत नाट्यम्, 2. मणिपुरी, 3. ओडिसी, 4. कत्थक, 5. भंगड़ा, 6. नागा, 7. बिहारी, 8. संथाली (मध्यप्रदेश)

हैं। भाषा की दृष्टि से यहाँ लगभग 150 भाषाएँ बोली जाती हैं। उनकी बोलियों, उपबोलियों की संख्या तो कहीं अधिक है। संसार के प्राचीनतम ग्रंथ **ऋग्वेद** के रूप में साहित्य की प्रथम धारा यहीं फूटी। इसके साथ इस धारा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, अरबी, फारसी और अंग्रेजी साहित्य की धाराएँ आ मिलीं। भारतीय साहित्य की विशाल सरिता इन सब धाराओं के संगम से बनी है।

नृत्य और संगीत के क्षेत्र में भी यही समन्वय देखने को मिलता है। हमारे नृत्य-रूपों को पौराणिक देवी-देवताओं के जीवन की घटनाओं से सजाया गया है। साथ ही हमारे लोक और आदिवासी नृत्यों की अनेक भाव-भंगिमाओं, मुद्राओं को अपनाकर भरतनाट्यम, ओडिसी, कुचिपुडि, मणिपुरी, कत्थक आदि शैलियों को निखारा-सँवारा गया है। कत्थक नृत्य शैली में मुगल दरबार की संस्कृति का बड़ा ही सुंदर रूप देखने को मिलता है।

भारतीय संगीत के इतिहास की अपनी अलग विशिष्टता है। सामगान से उत्पन्न भारतीय संगीत समय के साथ-साथ हिंदुस्तानी तथा कर्नाटक शास्त्रीय संगीत शैलियों के रूप में विकसित हुआ। किंतु इन दोनों शैलियों के विकास के पीछे समन्वय की एक लम्बी परंपरा है। आरंभ में इसके "मार्गी" और "देशी" दो मुख्य रूप थे।

"मार्गी" से तात्पर्य शास्त्रीय संगीत का मुख्य पथ या मुख्यधारा था। "देशी संगीत" स्थानीय अथवा क्षेत्रीय संगीत की वह धारा थी, जो अपने में लोक और आदिवासी दोनों संगीतों को समेटे हुए थी। किंतु धीरे-धीरे हमारे शास्त्रीय संगीत में अनेक लोकधुनों ने राग-रागिनियों के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। ईरानी संगीत का प्रभाव तो आज हिंदुस्तानी संगीत की अनेक राग-रागिनियों और वाद्य-यंत्रों पर स्पष्ट दिखाई देता है। वैसे भी हिंदुस्तानी संगीत की समृद्धि में अनेक मुस्लिम संगीतकारों का योगदान रहा है। इनमें अमीर खुसरो, तानसेन, नवाब वाजिद अली शाह, बड़े गुलाम अली, अलाउद्दीन खाँ, डागर बन्धु, फ्याज़ खाँ, बिस्मिल्ला खाँ, बेगम अख्तर आदि उल्लेखनीय हैं।

भारतीय वास्तुकला एवं मूर्ति कला की विकास यात्रा

साहित्य, संगीत की गौरव-गाथा के महत्वपूर्ण प्रसंगों की चर्चा दूसरे पाठों में की गई है। यहां हम भारतीय वास्तुकला एवं मूर्तिकला की विकास यात्रा की चर्चा करेंगे।

भारतीय वास्तुकला एवं मूर्तिफला की परंपरा भी बहुत प्राचीन है। इसमें हमारे सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक विचारों और भारत में आने वाली विभिन्न जातियों की कला-शैलियों का पूरा-पूरा इतिहास देखने को मिलता है। भारतीय कला की कहानी लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यता से आरंभ होती है। उस काल के मिले
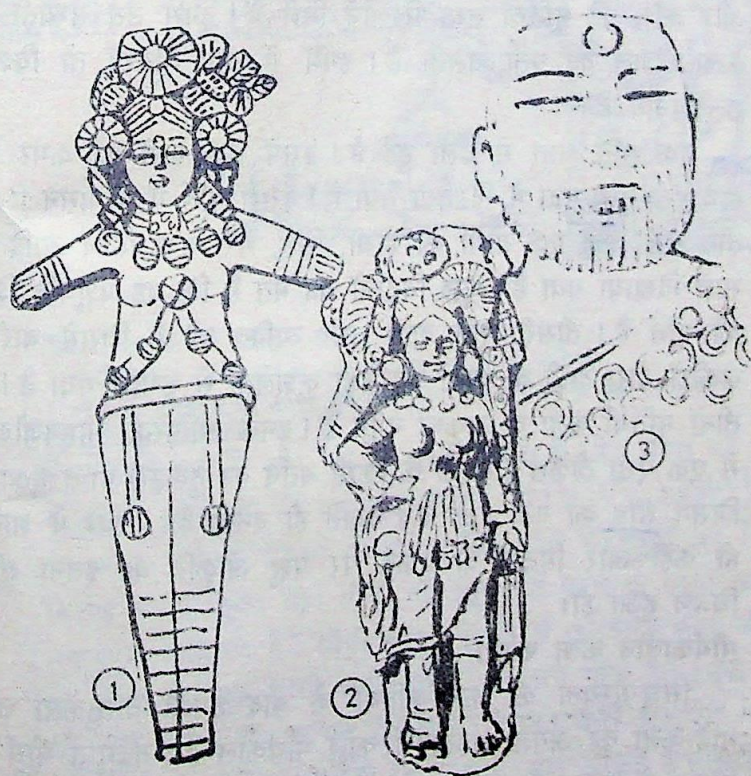
चित्र 6. – 1. पूर्व मोहन जोदड़ो की खुदाई में प्राप्त देवी की मूर्ति, 2. मोहन जोदड़ो का खुदाई में प्राप्त नृत्य मुद्रा में नारी, व 3. पुजारी की मूर्ति।

अवशेषों से पता चलता है कि सिंधु घाटी सभ्यता एक शहरी सभ्यता थी। इसके दो प्रमुख नगरों मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में अच्छी-अच्छी सड़कें थीं, दो मंजिले मकान थे जो पक्की ईंटों से बनाए गए थे। मकानों के अतिरिक्त सार्वजनिक स्नानगृह, अन्न भंडार आदि की व्यवस्था थी। गुजरात में "लोथल" नामक स्थान की खुदाई से पता चला कि वहाँ नौकाओं से सामान उतारने के लिए 216 × 37 मीटर लंबी चौड़ी तथा 15 फीट गहरी गोदी बनी हुई थी।

ये लोग मिट्टी, पत्थर तथा धातु की मूर्तियों के निर्माण में कुशल थे। खुदाई में हजारों की संख्या में मिट्टी, धातु, हड्डी, हाथी-दाँत और काँच की मूर्तियाँ तथा खिलौने मिले हैं। इनसे उस सभ्यता के कला-कौशल का पता चलता है। इनमें से तीन मूर्तियाँ तो विशेष उल्लेखनीय हैं।

एक मूर्ति धातु से ढली हुई है। इसमें एक नारी को कमर पर हाथ रखे नृत्य-मुद्रा में दिखाया गया है। दूसरी मूर्ति में योगासन स्थित तीन मुख वाले एक योगी को हाथी, सिंह, भैंसे तथा हिरन आदि के साथ दिखाया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह पशुपति शिव की मूर्ति है। तीसरी मूर्ति दाढ़ी वाले व्यक्ति की है जिसमें बारीक लकीरों द्वारा दाढ़ी के बालों को बड़ी कुशलता से उभारा गया है। ये तीनों मूर्तियाँ कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इनके अतिरिक्त मोहनजोदड़ो से एक ऐसा ठीकरा (मिट्टी के किसी बर्तन का टुकड़ा) प्राप्त हुआ है जिसमें सांड का गठा हुआ रूप देखते ही बनता है। संसार में शायद ही कहीं और मिट्टी के टुकड़े पर पशु आकृति का इतना सुंदर चित्रण हुआ हो।

मौर्यकालीन कला परंपरा

सिंधु-सभ्यता की कला-कृतियों के बाद हमारी वास्तुकला और मूर्ति-कला का अगला महत्वपूर्ण काल मौर्यकाल है। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में यूनान के राजदूत मेगस्थनीज़ ने अपनी पुस्तक में चंद्रगुप्त के महल का विस्तृत वर्णन किया है। उससे पता चलता है कि वह महल विशाल खंभों पर खड़ा था। इन खंभों पर सुनहली-रुपहली
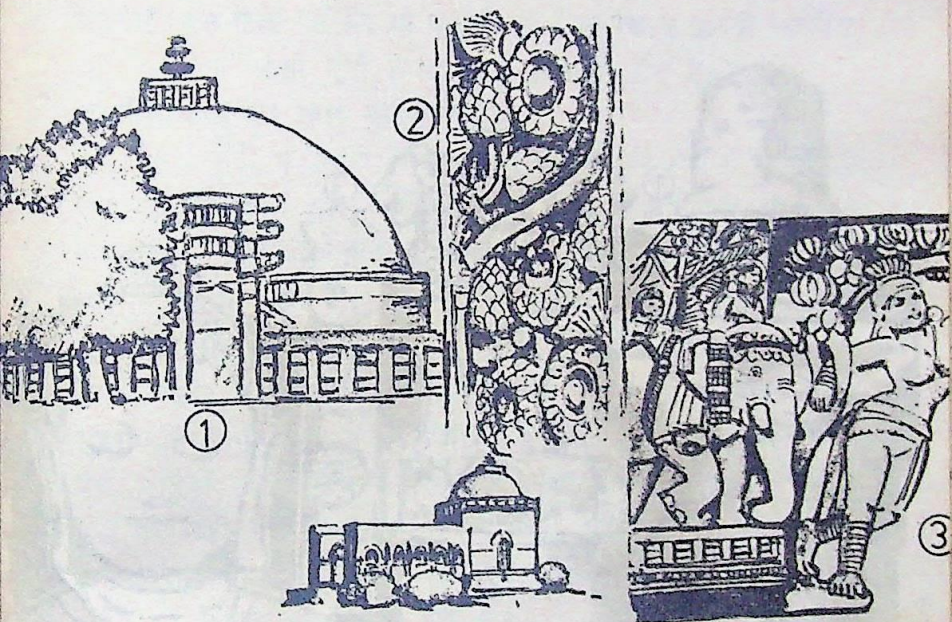
चित्र 7. बौद्ध धर्म से प्रभावित अशोक कालीन वास्तुकला
1. साँची स्तूप 2. तोरण द्वार के खंभों पर बेल-लताओं की कारीगरी,
3. साँची के तोरणद्वार पर तराशी हुई सुन्दर बेल लताओं, नारी व गज की मूर्ति।

बेल-लताएँ बनी हैं और उन पर पक्षी अंकित हैं। इस महल को बनाने में ईरानी कारीगरों की सहायता ली गई थी।

बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण इस काल में स्तूपों का निर्माण विशेष रूप से हुआ था। साँची का स्तूप उस काल के स्तूपों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। साँची स्तूप भोपाल से अट्ठारह मील की दूरी पर स्थित है। यह आधी कटी नारंगी की तरह गोल है। इसके बाहर की ओर पत्थर की अद्भुत रेलिंग है। इसकी चारों दिशाओं में चार तोरण द्वार हैं। रेलिंग पर देवी-देवता, नाग, यक्ष अंकित हैं। तराशी गई मूर्तियों की सुंदरता देखते ही बनती है। जुलूस के दृश्य का चित्रण इतना सजीव हुआ है कि उसमें दर्शाए गए आदमी और जानवर सभी
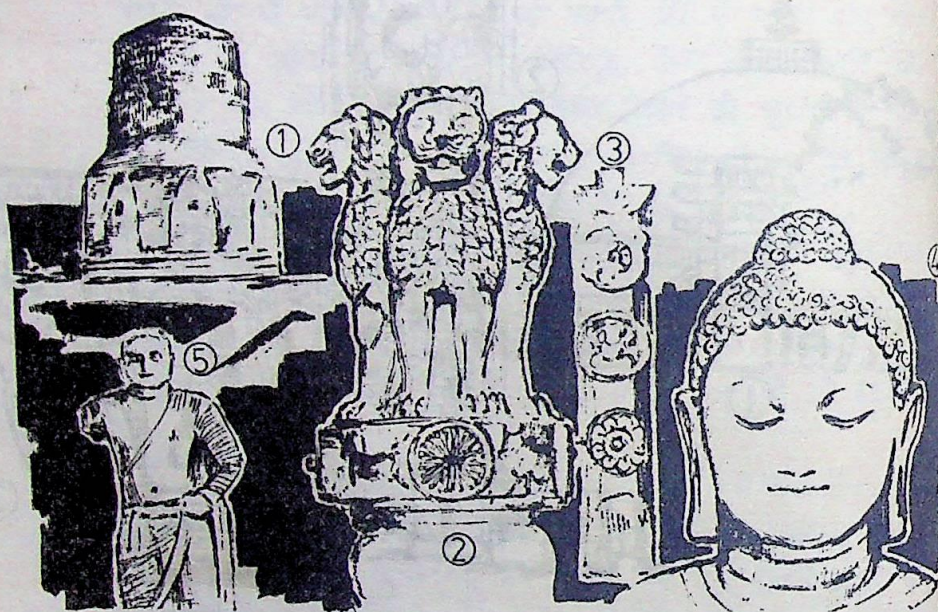
चित्र 8. मौर्यकालीन वास्तुकला
1. सारनाथ स्थित प्रसिद्ध स्तूप, 2. स्तम्भ की लाट पर पीठ से पीठ लगाए हुए चार सिंह, 3. स्तम्भ पर तराशे हुए बेलबूटे, 4. व 5. गांधार शैली में विकसित बुद्ध की मूर्ति।

चलते हुए से लगते हैं। स्तूपों के अतिरिक्त उस काल में अनेक स्तंभ (लाट) बनवाए गए। इन स्तंभों पर अशोक ने भगवान बुद्ध के उपदेश खुदवाए थे। इनमें से एक प्रसिद्ध स्तंभ सारनाथ में है। सारनाथ की लाट का ऊपरी भाग मौर्यकाल का उत्कृष्ट नमूना है। इसमें ऊपर पीठ से पीठ लगाए चार सिंह बैठे हैं। नीचे बीच में चक्र है और उसके **इधर-उधर हंस, दौड़ते घोड़े, हाथी तथा सांड हैं। यह चक्र आज हमारे राष्ट्रीय झंडे पर अंकित है और चारों सिंहों की आकृति हमारे देश के राजकीय कागजों की मुहर है।**

मौर्यकाल में ही भारत की उत्तरी सीमा और सिंध-पंजाब पर

करीब दो सौ साल तक यूनानियों का राज्य रहा। यूनानी तथा भारतीय कला के मेल से जो शैली विकसित हुई वह गांधार शैली कहलाई। इस कला का रूप तो यूनानी था, किंतु विषय-सामग्री भारतीय थी। बुद्ध की पहली मूर्ति शायद इसी कला की देन है।

भारतीय कला का स्वर्ण युग–गुप्तकाल

तीसरी सदी में उत्तरी भारत में गुप्त वंश का शासन प्रारंभ हो गया था। गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस युग में साहित्य, मूर्तिकला, वास्तुकला तथा चित्रकला के क्षेत्र में अद्‌भुत उन्नति हुई।

गुप्त सम्राट विष्णु के भक्त थे किंतु उन्होंने दूसरे धर्मों को भी समान आदर दिया था। यही कारण है कि बुद्ध की सबसे महान और सुंदर मूर्तियाँ गुप्तकाल में ही बनीं। गुप्त युग की बुद्ध की खड़ी और बैठी मूर्तियाँ सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। मथुरा के संग्रहालय में रखी बुद्ध की खड़ी मूर्ति के मुखमंडल पर शांति, गंभीरता तथा संतोष का आश्चर्यजनक चित्रण हुआ है। इसी प्रकार सारनाथ में प्राप्त बुद्ध मूर्ति शांति का सजीव रूप दिखाई देती है।

उस काल में विष्णु और शिव के भी एक से एक दर्शनीय मंदिर बने किन्तु विदेशी आक्रमण के कारण उसमें से एक भी पूर्ण नहीं बचा है। फिर भी अनेक खंडहरों और वहाँ से मिली मूर्तियों से उस काल की कला के सौन्दर्य का पता चलता है।

गुप्तकाल का सबसे सुंदर मंदिर ललितपुर जिले में देवगढ़ का दशावतार मंदिर है। इसमें बारह मीटर ऊँचा एक शिखर है, चार मंडप हैं और मूर्ति प्रकोष्ठ के द्वारों के खंभों पर अत्यंत सुंदर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। कानपुर के पास के एक गुप्त मंदिर की ईंटों को मूर्तियों की ही तरह भाँति-भाँति से सजाया गया है। इस प्रकार की ईंटें संसार में कहीं प्रयुक्त नहीं हुई हैं। इस मंदिर की दीवारों पर खानेदार सजावट में मिट्टी की बनी हुई डेढ़-डेढ़, दो-दो फुट की पट्टियों पर देवताओं की मूर्तियों और रामायण-महाभारत की कथाओं का अत्यन्त सजीव अंकन हुआ है।

①
②
③
④

← चित्र 9. व 10. अजन्ता की गुफाओं में चित्रकारी व मूर्तिकला
चित्र 10. — 1. व 2. अजन्ता, 3. अहिलोल, 4. बाघ

दिल्ली में कुतुब की लाट के पास ही गुप्तकाल में बनी लोहे की लाट धातु विज्ञान का अद्‌भुत नमूना है। डेढ़ हजार वर्ष बीत जाने पर भी इस पर धूप और वर्षा का कोई असर नहीं हुआ।

गुफा-मंदिरों की परंपरा

गौतम बुद्ध के शिष्यों ने पूजा-पाठ के लिए जंगलों-पहाड़ों में एकांत स्थान खोजे। बौद्ध धर्म को मानने वाले राजाओं और धनवान भक्तों ने उनके लिए पहाड़ों और गुफाओं को कटवाकर मंदिर बनवाए।

चित्र 11. गुफाओं में मूर्तिकला— 1. एलोरा (दीप स्तम्भ), 2. एलिफेंटा गुफा में ब्रह्मा, विष्णु व महेश की प्रसिद्ध त्रिमूर्ति, 3. अजंता, 4. अहिलोल

इन्हीं मंदिरों में दक्षिण में अजंता और मध्य प्रदेश में "बाघ" गुफा-मंदिर आते हैं। महाराष्ट्र में औरंगाबाद के पास सह्याद्रि पर्व की श्रेणियों में लगभग तीस गुफाओं में काले पत्थरों को काटकर व घास्तु-शिल्प, मूर्ति और चित्रकला के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किए ग हैं। इन गुफाओं की दीवारों पर चित्र बनाने का सिलसिला एक हज साल तक चलता रहा। कला के विद्वानों की दृष्टि में अजंता की क भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से बेजोड़ है। अजंता की गुफाओं लगभग 75 मील दूर एलोरा के गुफा-मंदिर हैं। एलोरा की गुफाओं शैव-वैष्णव, जैन, बौद्ध तीनों मंदिर हैं, पर शैव-वैष्णव मंदिर अधि हैं। वहाँ के 39 गुफा-मंदिरों में कैलाश मंदिर प्रधान है।

अजंता और एलोरा के गुफा-मंदिरों के अतिरिक्त एक अत्य प्रसिद्ध गुफा-मंदिर एलीफेंटा नामक स्थान पर है। बंबई के पास ए छोटे टापू पर पहाड़ काटकर गुफा बनाई गई है, जहाँ शिव-पार्वती क अनेक सुंदर मूर्तियाँ हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध एक त्रिमूर्ति है, जो ब्रह्म विष्णु और महेश की सम्मिलित मूर्ति है। ऐसे कम गुफा-मंदिर हैं, ज पत्थर में इतनी सुंदर और सही आकृतियाँ उकेरी गई हों।

इन गुफा मंदिरों की परंपरा में दक्षिण भारत के महाबलिपुरम पहाड़ काटकर मंदिर बनाए गए हैं। मंदिर की पहाड़ी दीवारों मूर्तियों की भरमार है। मानव, पशु, देवता और राक्षस सभी को ब खूबी के साथ दिखाया गया है। गंगावतरण के दृश्य में गंगा के भू पर आने पर मनुष्यों तथा पशुओं की प्रसन्नता से मानो पत्थर में खलबली मच गई है।

मध्य-युग के मंदिर

मध्य-युग में मंदिर निर्माण की परंपरा में अनेक मंदिरों का निर्मा हुआ। इन मंदिरों में कोणार्क का सूर्य मंदिर और खजुराहो के मंदि अति प्रसिद्ध हैं। समुद्र के किनारे बने कोणार्क के सूर्य मंदिर में स के सात घोड़े बने हुए हैं। इन घोड़ों को देखकर ऐसा लगता है जै वे वेग के साथ दौड़ रहे हों। घोड़ों के खुर, पुट्ठे, नथुने सभी सजी लगते हैं। घोड़ों द्वारा खींचे गए रथ के चक्के, और धुरी चक्कर औ

गति का अनुमान कराते हैं।

खजुराहो के मंदिर चंदेल राजाओं द्वारा करीब एक हजार वर्ष पूर्व बनवाए गए थे। आरंभ में इन मंदिरों की संख्या 85 थी, किंतु अब केवल 22 मंदिर बचे हैं। खजुराहो के एक-एक मंदिर, और उस के भीतरी भाग की एक-एक दीवार पर कलात्मक प्रतिमाएँ साकार हो उठी हैं। कला का इतना उत्कृष्ट रूप शायद ही कहीं देखने को मिले।

मंदिरों की श्रृंखला में अन्य प्रसिद्ध मंदिर हैं गुजरात में सोमनाथ का मंदिर और आबू पर्वत पर दिलवाड़ा के मंदिर। सोमनाथ का मंदिर
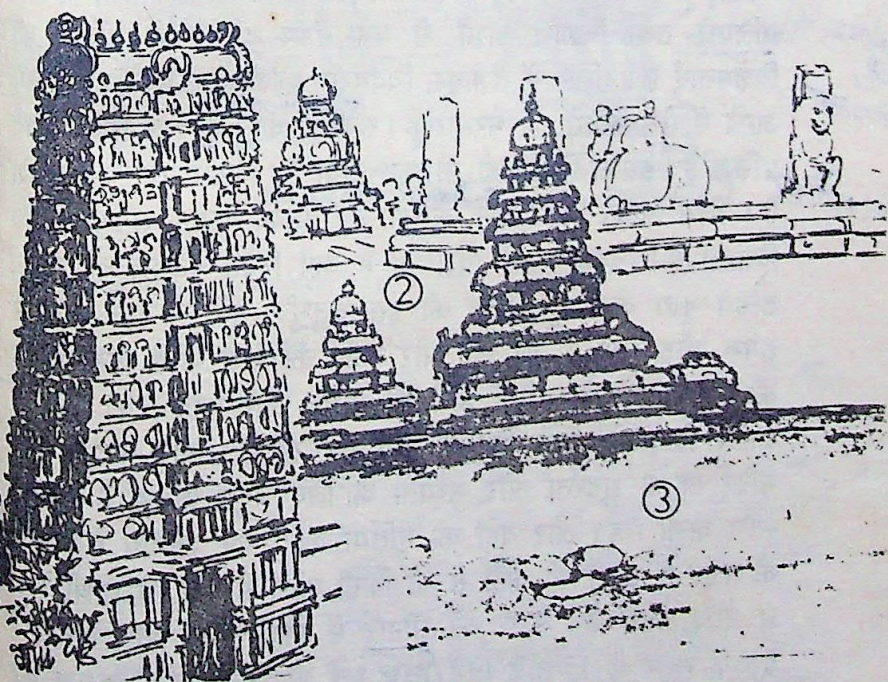
चित्र 12. दक्षिण भारत में वास्तुकला
1. मीनाक्षी मंदिर, 2. गोपुरम्, 3. महाबलीपुरम्

सोने का बना हुआ था। महमूद गजनवी इस मूर्ति को तोड़ कर मंदिर की सारी संपत्ति लूटकर हजारों ऊँटों पर लादकर ले गया था। दिलवाड़ा के जैन मंदिर संगमरमर के बने हुए हैं। इनमें हजारों आकृतियाँ और डिज़ाइन बने हैं, किंतु प्रत्येक डिज़ाइन एक-दूसरे से भिन्न है।

दक्षिण भारतीय मंदिर

दक्षिण भारत में भी मंदिरों की अत्यंत प्राचीन परंपरा है। इन सभी मंदिरों में उच्चकोटि की वास्तुकला और मूर्तिकला के दर्शन होते हैं। दक्षिण के कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के कुछ भागों के मंदिरों की बनावट उत्तर के कुछ मंदिरों से मिलती-जुलती है। किंतु सुदूर दक्षिण के मंदिर उत्तर के मंदिरों से बहुत भिन्न हैं। मंदिर का मुख्य द्वार जिसे "गोपुरम" कहते हैं, अनेक मंजिलों वाला होता है। लम्बे-लम्बे गलियारे तथा विशाल खंभों से बने मंडप दक्षिण के मंदिरों की विशेषताएँ हैं। दक्षिण में तंजावूर, चिदंबरम, कांजीपुरम, मदुरै, रामेश्वरम आदि में ऐसे मंदिरों की भरमार है। तंजावूर का बृहदेश्वर मंदिर विश्व प्रसिद्ध है। इसका शिखर दो सौ फुट ऊँचा है। शिखर पर स्वर्ण कलश है। जिस पत्थर पर स्वर्ण कलश है, उसका वजन लगभग 900 क्विंटल है। चिदंबरम की विशेषता है वहाँ स्थित नटराज की मूर्ति। तांडव नृत्य करते हुए शिव की इस चतुर्भुज मूर्ति में एक हाथ में डमरू और दूसरे में अंधकार और बुराई का नाश करने वाली अग्नि की ज्वाला है। शेष दोनों हाथ को अभय और वरदान की मुद्रा में धारण किए, वे प्रबल वेग से नृत्य कर रहे हैं। मदुरै का मीनाक्षी मंदिर अपनी सुंदरता और भव्यता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। हजार स्तंभ वाला मंडप और वहाँ की मूर्तियों का शिल्प दर्शनीय है। मंदिर के मंडप में खंभों को कहीं से भी किसी कोण से देखें, वे सीधी रेखा में दीख पड़ते हैं। उत्तर की मीनार में पाँच शिला स्तंभ लगे हैं। प्रत्येक स्तंभ में 22-छोटे छोटे स्तंभ एक ही शिलाखंड में तराश कर बनाए गए हैं। इन पर चोट करने से बहुत मधुर ध्वनि उत्पन्न होती है।
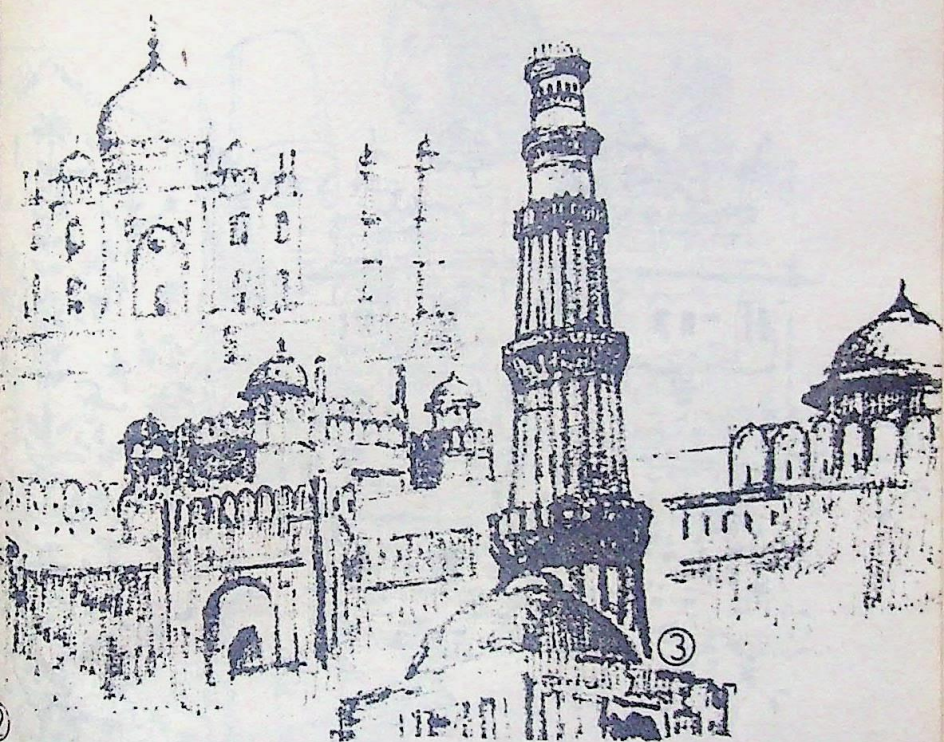
चित्र 13. मुगलकालीन वास्तुकला — 1. ताजमहल, 2. लाल किला, 3. कुतुब मीनार

इस्लाम काल में कला

भारत में मुस्लिम राज्यों की स्थापना से कला के क्षेत्र में एक नए युग का प्रारंभ हुआ। इस्लाम में मूर्ति पूजा नहीं होती। अतः इस काल में महल, मस्जिद तथा मकबरों का निर्माण हुआ। विभिन्न सुल्तानों और मुगल बादशाहों के काल में बनी इन इमारतों में भारतीय वास्तुकला का ईरानी, तुर्की तथा अन्य इस्लामी देशों में प्रचलित वास्तुकलाओं के साथ सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

इस्लामी वास्तुकला के विकास में मुगल शासकों का विशेष योगदान रहा। इनमें भी अकबर और शाहजहाँ अधिक उल्लेखनीय हैं। फतेहपुर सीकरी का "बुलंद दरवाजा" संसार का सबसे ऊँचा दरवाजा माना
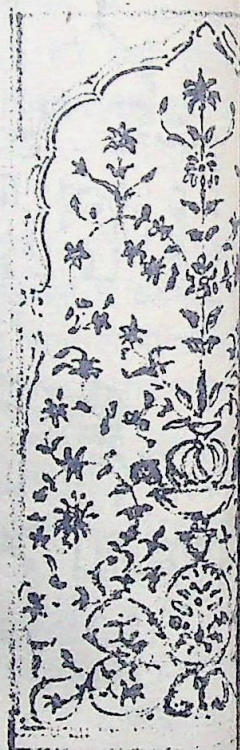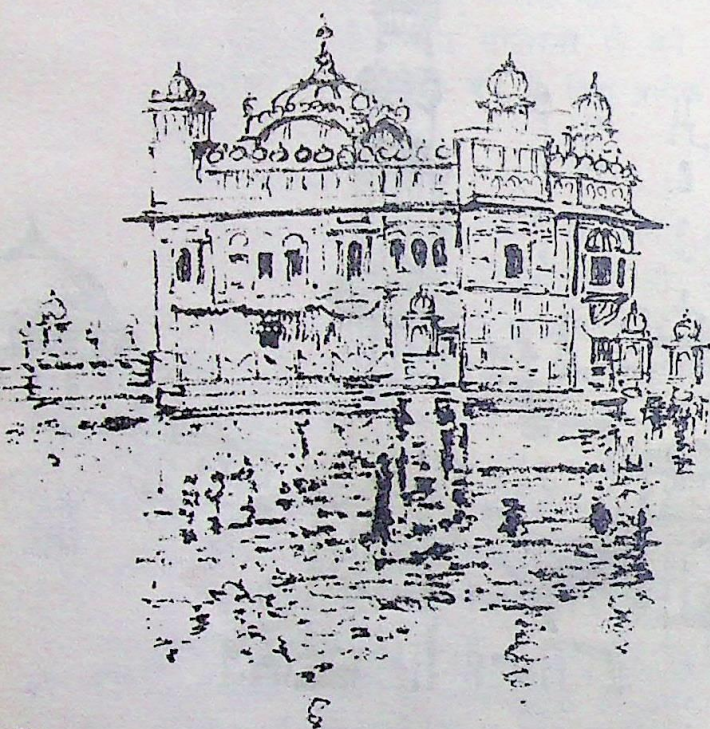
चित्र 14. अमृतसर स्थित स्वर्ण मंदिर

जाता है। सिकंदरा (आगरा) में बनी अकबर के मकबरे की बिना गुंबद वाली इमारत अपनी रूप-योजना में अनोखी है। शाहजहाँ का काल मुगल वास्तुकला का स्वर्ण युग माना जाता है। उसके समय में आगरा और दिल्ली के किले और आगरा की "मोती मस्जिद" तथा दिल्ली की "जामा मस्जिद" बनी। किंतु इन सभी में आगरा का ताजमहल न केवल शाहजहाँ के समय का वरन् सम्पूर्ण मुगल वास्तुकला का अनुपम उदाहरण है। यह स्मारक अपनी सुंदरता के कारण संसार में प्रसिद्ध है।

चित्र 15. कृषाण व गुप्तकालीन वास्तुकला →

चित्र 16. ब्रिटिश कालीन वास्तुकला
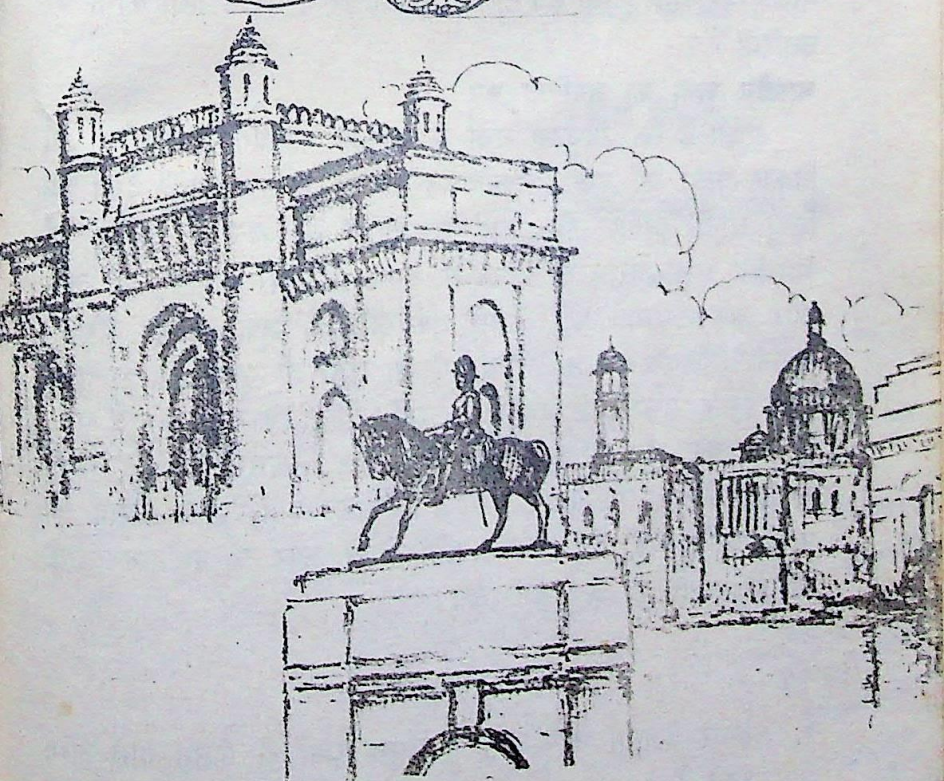
भारतीय वास्तुकला में ईसाई एवं सिक्ख धर्मों का योगदान

हिंदू, बौद्ध, जैन तथा मुसलमानों के साथ-साथ भारतीय वास्तुकला में ईसाइयों तथा सिक्खों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गोवा, बम्बई, कलकत्ता, इलाहाबाद, आगरा आदि नगरों के गिरजाघर सुंदर साज-सज्जा और कुशल वास्तुकला के उदाहरण हैं। भारतीय गिरजाघर सामान्यतः यूरोपीय वास्तु-शैली के अनुकरण पर बने हैं।

सिक्खों के गुरुद्वारों में अमृतसर का "हरमंदिर साहब" गुरुद्वारा सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसे "स्वर्ण मंदिर" भी कहते हैं। यह गुरुद्वारा तीन मंजिल का है और एक पवित्र सरोवर के बीच बना है। इसकी पहली मंज़िल एक गलियारे द्वारा सेहन से जुड़ी है और इसके भीतरी भाग में सिक्खों का पवित्र ग्रंथ ***गुरु ग्रंथ साहिब*** स्थापित है। दूसरी मंजिल पर शीश महल है। तीसरी मंजिल पर गुम्बद है तथा कोनों पर छतरियाँ हैं।

भारतीय कला का समन्वित रूप

आशा है कि उपर्युक्त चर्चा से आपको भारतीय कला-सरिता की विकास-यात्रा की एक झलक प्राप्त हो गई होगी। आपने देखा कि सिंधु घाटी, द्रविड़ और आर्य सभ्यताओं के काल से आरंभ हुई भारतीय कला-सरिता के प्रवाह में समय-समय पर अनेक मोड़ आए और अनेक प्रभाव पड़े। इसमें एक ओर तो शक, कुषाण, ईरानी, यूनानी शैलियों से प्रभावित धाराएँ आ जुड़ीं तो दूसरी ओर इस्लामी तथा ईसाई सभ्यता से प्रवाहित धाराएँ। किंतु इन सबने हमारी कला के रूप को और भी अधिक सँवारा, और निखारा। उसे निरंतरता, समृद्धि और गरिमा प्रदान की। इसी कारण हमारी कला-सरिता का प्रवाह जाति, धर्म और वर्ग की सीमाओं से ऊपर उठ महामानवता के विशाल सागर का अंग बन सका।

बोध-प्रश्न

1. हमारे देश में कौन-कौन से प्रमुख धर्मों के मानने वाले लोग रहते हैं ?

2. भारत की प्रमुख नृत्य-शैलियों के नाम बताइए।
3. "मार्गी" और "देशी" संगीत में क्या अंतर है ?
4. भारत के कम-से-कम पाँच प्रसिद्ध मुस्लिम संगीतकारों के नाम बताइए।
5. सिंधु घाटी की सभ्यता की तीन प्रसिद्ध मूर्तियों की क्या विशेषताएँ हैं ?
6. सांची का स्तूप क्यों प्रसिद्ध है ?
7. हमारे राष्ट्रीय झंडे में बना चक्र किस मूर्ति से लिया गया है ?
8. गुफा-मंदिर क्यों बनाए गए ?
9. कानपुर के पास गुप्तकाल के बने मंदिर की ईंटों की क्या विशेषताएँ हैं ?
10. कोणार्क के मंदिर की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
11. "गोपुरम" किसे कहते हैं ?
12. नटराज की मूर्ति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
13. ताजमहल क्यों प्रसिद्ध है ?
14. भारत के संबंध में रवींद्रनाथ ठाकुर ने इसे "महामानवता का विशाल सागर" क्यों कहा है ?

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
समन्वय	— संयोग, मेल
वाद्य-यंत्र	— बाजा, बजाने का साज
समृद्धि	— उन्नति, प्रगति
प्रतिष्ठा	— मान-सम्मान, आदर, इज्जत
अवशेष	— जो बच गया हो, खंडहर
गोदी	— बंदरगाह

नृत्य-मुद्रा — नाचने की भंगिमा, मुख, हाथ, गर्दन आदि अंगों की विशेष मुद्रा या उनके द्वारा भाव प्रकट करना।

उत्कृष्ट — उन्नत, श्रेष्ठ, उत्तम

ठीकरा — मिट्टी के बर्तन का टूटा हुआ टुकड़ा

रेलिंग — भवन, सड़क आदि पर लोहे, लकड़ी, पत्थर आदि से बनी रोक।

तोरणद्वार — मुख्य दरवाजा, प्रवेश द्वार

वास्तुशिल्प — भवन, मंदिर आदि बनाने की कला

गलियारा — संकरा रास्ता, गली जैसा मार्ग, गैलरी

सेहन — आँगन

संगीत-स्वामी : हरिदास

पात्र-परिचय

स्वामी हरिदास — संत वेश, हाथ में गुदड़ी और करुवा

सम्राट अकबर — मुगलिया शाही लिबास

तानसेन — अकबर के दरबार में नवरत्नों में से एक संगीत-सम्राट, [ग्वालियर घराना तथा दरबारी पोशाक]

नट — युवा कलाकार—मिर्जई या कुरता, सफेद चुस्त पाजामा, कमर में लाल रंग का फेंटा और रंगीन पगड़ी

नटी — युवती कलाकार, घाँघरा (नीला), हरी कमीज या फरिया, पीली ओढ़नी (गोटे के कामवाली), गले और हाथों में चाँदी के देहाती आभूषण, पाँवों में घुँघरू।

दृश्य - आरंभ

(पर्दा/यवनिका उठने पर लोकधुन के स्वर सुनाई देते हैं। नट-नटी लोकधुन पर लोक-नृत्य करते हुए प्रवेश करते हैं। दर्शकों को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। संगीत की धुन बंद हो जाती है।)

नटी : ओ मेरे प्राण प्रिय स्वामी, तुम हो अन्तर्यामी ! दर्शक ध्यान लगाए बैठे हैं। आज क्या खेल लेकर आए हैं ?

नट : ओ मेरी नटखट नटी, तुम हो बहुत हठी। आज संगीत के स्वर झंकार रहे हैं।

नटी : संगीत के स्वर ! पाश्चात्य संगीत का शोर या भाव-विभोर भारतीय संगीत ? कौन से संगीत के स्वर झंकार रहे हैं ?

नट : भारतीय संगीत के स्वर।

नटी : भारतीय संगीत के कौन से स्वर ? भारत में संगीत के अनेक रंग हैं लेकिन उनमें आनंद की लहर एक है। अब संगीत की शैली या उसका प्रकार बताओ तो जानें, आपको नाटक का सच्चा खिलाड़ी मानें।

नट : ओ मेरी नटखट नटी, तुम हो बहुत हठी, अध्यापक का सा रौब दिखा रही हो, खेल को कक्षा का कमरा बना रही हो। प्रश्न पर प्रश्न किए जा रही हो ?

नटी : बहाने मत बनाओ, भारतीय संगीत के प्रकार बताओ। नहीं जानते तो हार मान जाओ।

नट : हाँ-हाँ तुम जीतीं, हम हारे। अब बताओ तो जानें।

नटी : नहीं जी, तुम जीते हम हारे—हम सवाल करना जानते हैं। जवाब देना नहीं। जवाब आप दीजिए। देर मत कीजिए। वरना दर्शक चले जाएँगे। खेल किसको दिखाएँगे ?

नट : सुनो मेरी नटी, उत्तर भारत में जो शास्त्रीय राग-रागिनियाँ गाई जाती हैं, उसे 'हिन्दुस्तानी संगीत' कहते हैं। जो रागिनियाँ दक्षिण भारत में गाई-बजाई जाती हैं, वह कर्नाटक संगीत कहलाती हैं।

नटी : ठीक है पर बोलने का ढंग हमें पसंद नहीं आया।

नट : क्या हुआ ?

नटी : (हाथ नचा कर) गाए-बजाए, गाए-बजाए कहते रहे। गायन-वादन कहते तो दर्शक भी समझ लेते और भारतीय संगीत के प्रकार बताकर तो तुमने मेरा दिल दुखा दिया। अब मैं तुम से कभी नहीं बोलूँगी (वह रोती हुई रूठ कर बैठ जाती है)।

नट : ओ मेरी नटी, मान जाओ, मुझे बताओ मुझसे क्या भूल हो गई या दर्शकों से कहूँ तुम्हें मनाएँ।

नटी : मैं दर्शकों से नाराज नहीं हूँ। मैं तो तुम्हारे अज्ञान

पर तरस खाती हूँ। अब दर्शकों को बताती हूँ। (लोक-संगीत की धुन बजती है। वह लोक-नृत्य का ठुमका लगाती है। अचानक संगीत और लोक-नृत्य बंद) मेरे प्यारे दर्शको, भारतीय संगीत में लोक-संगीत भी संगीत का एक प्रकार है, जो काश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से पूर्वांचल तक गाया-बजाया और नाचा जाता है। उसका जिक्र ही नहीं किया ?

नट : सच कहा नटखट नटी, लोक-संगीत भी संगीत का एक प्रकार है। बच्चे का जन्म होने पर घर-घर में इन गीतों की धुन गूँजती है। शादी-ब्याह पर इसकी धूम मचती है। मेले-तमाशे में लोक-गीत समा बाँध देते हैं।

नटी : त्यौहारों और फसल के घर आने पर भारत के कोने-कोने में गीतों की लय और घुँघरुओं की रुनझुन के क्या कहने ? नृत्य को भी भुला गए ?

नट : अच्छा याद दिलाया नटी, गायन, वादन, नृत्य को ही संगीत कहते हैं। हमारे यहाँ तो नृत्य भी संगीत में आता है।

नटी : जैसे शास्त्रीय नृत्य में उत्तर भारत में कत्थक, दक्षिण भारत में भरतनाट्यम, ठीक है ना ?

नट : गलत, ओडिसी और कुचिपुडि नृत्य का नाम भी तो जान लो। नृत्य तो तुमको आएगा नहीं।

नटी : मुझे तो लोक-नृत्य से ही छुटकारा नहीं मिलता। भारत के जिस कोने में जाती हूँ—ढोलक पर थाप पड़ते ही मेरे पाँव थिरकने लगते हैं। पंजाब का भांगड़ा हो, असम का बिहू हो या गुजरात का गरबा। नाम गिनाने पर आऊँ तो 24 घंटे लग जाएँगे। दर्शक ऊब जाएँगे।

नट : ओ मेरी नटी, तुम बात कहती हो खरी।

नटी : अब बोलो कौन-सा खेल दिखा रहे हो ?

नट : आज संगीत के स्वर झंकार रहे हैं, हम 'संगीत-स्वामी' को पुकार रहे हैं।

नटी : (गाती है)
ओ मेरे प्राणों के स्वामी, तुम हो अन्तर्यामी।
आज सभी दर्शक देखेंगे, नाटक 'संगीत-स्वामी।'
(नट-नटी चले जाते हैं)

प्रथम दृश्य

(रात का पहला पहर—कमरे में बड़े-बड़े दीप-स्तंभों का प्रकाश है। अकबर के राजमहल का दृश्य। सम्राट अकबर और तानसेन बैठे बातें कर रहे हैं।)

अकबर : तानसेन, तुम्हारे उस्ताद स्वामी हरिदास ने हमारी प्रार्थना को ठुकरा दिया। उन्होंने महल में आने से साफ इंकार कर दिया।

तानसेन : जहाँपनाह, मैंने पहले ही कहा था कि वे हमारी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करेंगे। आप ही नहीं माने।

अकबर : हम हिन्दुस्तान के बादशाह हैं। हम समझते थे हिन्दुस्तान में हमारी बात कोई नहीं टालेगा। क्या करें संगीत ने हमें दीवाना बना दिया है।

तानसेन : सम्राट, क्षमा करें। संगीत ही क्या, आपको तो इस देश की प्रत्येक कला से स्नेह और लगाव है।

अकबर : तानसेन ! लेकिन संगीत से हमें खास प्यार है। जब तुम संगीत सुनाते हो तो हम किसी और दुनिया में पहुँच जाते हैं। जब तुम मल्हार की धुन छेड़ते हो तो रिमझिम बरसात होने लगती है। तुम्हारा संगीत सुनने जंगल के हिरन खिंचे चले आते हैं। तुम तो संगीत के बादशाह हो।

तानसेन : जहाँपनाह, मामूली आदमी को संगीत का सम्राट मानते हैं। मैं आपका आभारी हूँ, लेकिन महाराज वास्तव में संगीत के स्वामी तो मेरे गुरु हरिदास जी हैं।

अकबर : मगर तानसेन, हिंदुस्तान का बदनसीब बादशाह स्वामी हरिदास का संगीत सुन ही नहीं पाएगा।

तानसेन : जहाँपनाह, निराश न हों। स्वामी हरिदास के संगीत को सुनने का आपको मौका अवश्य मिलेगा।

अकबर : तानसेन ! मौका मिलेगा ? कब ? जब हम अल्ला-मियाँ को प्यार हो जाएँगे ?

तानसेन : जहाँपनाह, कल प्रातः ही उनके आश्रम पर संगीत सुनने का मौका मिल सकता है। लेकिन आप सम्राट के वेश में चले तो वह अवसर हाथ से निकल जाएगा।

अकबर : तानसेन, तुम जानते हो, हमें हिन्दुस्तान और यहाँ के संगीत से कितना लगाव है। हम स्वामी हरिदास का संगीत सुनने किसी भी लिबास में जा सकते हैं।
(तानसेन अकबर से कान में कुछ कहता है और अकबर हाँ में हाँ मिलाते हैं। थोड़ी देर खामोश इशारों में बातें होती हैं।)
सुबह पहुँचने का इंतज़ाम अभी कर दो।

तानसेन : जैसी आज्ञा जहाँपनाह!
(संगीत की धुन और घोड़ों के टापों की आवाज सुनाई देती है।)

दूसरा दृश्य

(प्रभात का समय, पर्याप्त प्रकाश। वृंदावन में 'निधि-वन आश्रम' का एक कोना, बीच में तख्त और इधर-उधर आसन बिछे हैं। आसनों पर स्वामी हरिदास के शिष्य उनकी प्रतीक्षा में बैठे हैं।

तभी तानसेन का प्रवेश होता है। वह आगे आसन पर बैठ जाते हैं। अकबर नौकर के लिबास में बहुत पीछे आसन पर बैठ जाते हैं। स्वामी हरिदास हाथ में करुवा लिए प्रवेश करते हैं। सभी शिष्य और उपस्थित लोग खड़े हो जाते हैं। स्वामी तख्त पर आसन ग्रहण करते हैं। पास ही करुवा रखकर हाथ के इशारे से सबको बैठने का आदेश देते हैं। तानसेन उनके चरण छूते हैं।)

स्वामी हरिदास : तानसेन तुम कब आए ?

तानसेन : गुरुदेव अभी-अभी आया हूँ। आपके दर्शन की इच्छा खींच लाई।

स्वामी हरिदास : घर-परिवार में सब कुशल है ?

तानसेन : जी, गुरुदेव !

स्वामी हरिदास : वह पीछे आसन पर कौन बैठा है ?

तानसेन : गुरुदेव, वे मेरे ही साथ हैं।

स्वामी हरिदास : तुम्हारी गायकी की प्रशंसा आश्रम में बैठा ही सुनता रहता हूँ। बहुत प्रसन्नता होती है। तुमने कई नई राग-रागिनियों की रचना की है।

तानसेन : स्वामी जी, यह तो सब आपकी ही कृपा है। इसमें मेरी विशेषता कम और आपकी शिक्षा का प्रभाव अधिक है।

स्वामी : तानसेन, गुरु-भक्ति में बह जाते हो। अपनी रचना पर मेरा प्रभाव बताते हो ?

तानसेन : नहीं गुरुदेव, मैं सच कहता हूँ। मैं तनिक भी भावुक नहीं हूँ। रचना या कृति तो आपकी ही है, मैंने उन्हें नई बंदिश दी है। स्वरों को आपकी छाया में ही नया रूप दिया है।

स्वामी : चलो, विवाद नहीं करते। अल्लादीन, तानसेन को तानपूरा दो। आज इनकी नई बंदिश सुनेंगे। राज-महल का गायक आश्रम में भी अपने स्वरों का नया रंग जमाएगा। प्रभु चरणों में संगीत का

अलौकिक आनंद आएगा।

(अल्लादीन तानपूरा लाकर तानसेन को देता है। तानसेन तानपूरे के तारों के स्वर मिलाते हैं और गाते हैं।)

(गाने में जान-बूझ कर गलत स्वर लगा देते हैं)

स्वामी : बंद करो तानसेन, यही तुम्हारी नई बंदिश है ? गलत स्वर लगाते हो, इधर लाओ तानपूरा।

(तानसेन उठकर तानपूरा देते है। स्वामी आँखें बंद करके मधुर लय में वही राग सुनाते हैं। सभी श्रोता-दर्शक झूम उठते हैं। अकबर भी झूम उठते हैं। राग बंद होता है। स्वामी आँखें खोलते हैं। तानपूरा तख्त पर रख देते हैं।)

तानसेन, ऐसे गाया जाता है यह राग समझे ?

तानसेन : (अकबर से आँखों से संकेत करते हुए, असावधानी से) जी... जी ! गुरुदेव !

स्वामी : (ध्यान से देखते हैं) अच्छा तानसेन। अपने सम्राट को सेवक बनाकर लाए हो। खूब नाटक किया है।

तानसेन : जी गुरुदेव। आपने कैसे पहचाना ?

स्वामी : तुम्हारी आँखों के संकेतों से। तुम्हारे संकेत सेवक के से लग रहे थे और तुम्हारे सेवक के संकेत सम्राट के से।

(अकबर उठकर आता है और गुरु जी के चरण स्पर्श करता है। स्वामी जी आशीर्वाद देते हैं।)

अकबर : माफ करना स्वामी जी ! आपका संगीत सुनने का मौका और किसी तरीके से मिलना मुश्किल था। आपका संगीत आपका ही संगीत है।

स्वामी : सम्राट, अच्छा है, आप संगीत का सम्मान करते हैं।

अकबर : स्वामी जी, हम इस हिन्दुस्तान के सभी रीति-रिवाजों और कलाओं की इज़्ज़त करते हैं। उन्हें ऊँचा दर्जा देते हैं। हमें नाज़ है हिन्दुस्तान पर। हम इस पवित्र जमीन को सलाम करते हैं। स्वामी जी, यह मुल्क संगीत, नृत्य और कला का भरपूर खजाना है।

स्वामी : आप बहुत अच्छा करते हैं सम्राट ! अल्लादीन, मोहन से कहो सम्राट और तानसेन को मिसरी का प्रसाद लाकर दें और उन्हें आदर से विदा करें। मैं थोड़ी देर बाद समाज के लिए आऊँगा।

(स्वामी जी अपनी कुटिया में चले जाते हैं।)

तानसेन : देखा जहाँपनाह, संगीत की मिठास और उसका असर ! इन्होंने संगीत को समाज से जोड़ा है इसलिए वे संगीत की शिक्षा को "समाज" कहते हैं।

अकबर : सचमुच, स्वामी हरिदास संगीत-स्वामी हैं। मैं उनका संगीत सुनकर बाग़-बाग़ हो गया। एक बात है तानसेन, तुम्हारा गायन भी कोई कम नहीं है। लेकिन स्वामी जी के गायन का तो जवाब ही नहीं।

तानसेन : जहाँपनाह, स्वामी जी के संगीत और मेरे गायन का क्या मुकाबला ? वह तो संसार के स्वामी को रिझाने के लिए गाते हैं और मैं हिन्दुस्तान के शहंशाह की खुशी के लिए गाता हूँ।

(मोहन सम्राट अकबर और तानसेन को पीपल के पत्ते पर प्रसाद देता है। वे प्रसाद को आदर से लेते हैं और चले जाते हैं।)

(लोक-संगीत की धुन पर नट-नटी नाचते हुए आते हैं। लोक संगीत बंद होता है। नटी नाचती-नाचती खामोश हो जाती है।)

नट : अब बोल मेरी नटखट नटी, तुम हो बहुत हठी। दर्शकों को नमस्कार करो और पर्दा गिराओ।

नटी : नमस्कार भी करती हूँ। परदा भी गिरेगा, लेकिन एक बात कहती हूँ। दर्शक भाइयो और बहनो ! अगर संगीत-सम्राट बनना हो तो सम्राट की खुशी के लिए गाओ। अगर संगीत-स्वामी बनना हो तो परमपिता परमेश्वर के लिए संगीत की साधना करो। अपनी मस्ती के लिए गाना हो तो लोक-संगीत छेड़ो; जैसे मैं छेड़ती हूँ।

(लोक संगीत की धुन बजती है। दोनों नाचते हुए चले जाते हैं।)

बोध-प्रश्न

1. भारत में शास्त्रीय संगीत की कौन-सी दो प्रमुख शैलियाँ हैं ?
2. भारतीय संगीत में कौन-कौन सी कलाएँ शामिल हैं ?

3. भारत में कौन-से प्रमुख शास्त्रीय नृत्य हैं ?
4. लोक-गीत और लोक-नृत्य की क्या विशेषताएँ हैं ?
5. "भारतीय संगीत के रंग अनेक और आनंद की लहर एक" से आप क्या समझते हैं ?
6. स्वामी हरिदास ने अकबर के दरबार में गाने की प्रार्थना क्यों नहीं स्वीकार की ?
7. तानसेन ने किस प्रकार से सम्राट अकबर को स्वामी हरिदास का संगीत सुनवाया ?
8. स्वामी हरिदास को "संगीत का स्वामी" क्यों कहा गया ?
9. भारतीय संगीत की विशेषताओं पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

शब्द	**अर्थ**
यवनिका	—नाटक में प्रयुक्त मंच के सामने का परदा
अन्तर्यामी	मन की बात जानने वाला
पाश्चात्य	—पश्चिमी
गायन-वादन	—गाना, बजाना
नृत्य	—नाचना
उस्ताद	—गुरु
अहसास	—अनुभव
बदनसीब	—अभागा
अल्लामियाँ को प्यारा हो जाना	—मृत्यु हो जाना
लिबास	—वेश
बंदिश	—गीत की स्वर योजना
नाज़	—गर्व
बाग़-बाग़ होना	—खुशी से झूम उठना

खंड III

हमारी लोक परंपरा

गुणवंती

एक गाँव में मोहन नाम का गरीब आदमी रहता था। बचपन में ही उसके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी। उसका पालन-पोषण उसकी सौतेली बहन ने किया था, किंतु उसकी बहन का व्यवहार उसके प्रति अच्छा नहीं था। इसी कारण उसका बचपन बड़ी ही कठिनाइयों में बीता। अपनी ही उम्र के अन्य लोगों की तरह वह भी अपना घर बसाना चाहता था। वह अनपढ़ था तथा कोई काम-धंधा भी नहीं करता था। इसलिए उसके साथ कोई अपनी लड़की का रिश्ता करने के लिए तैयार नहीं हुआ।

मोहन ने सोचा, किसी नाई से अपनी शादी के लिए बात करूँ। नाई और पंडित का शादी तथा अन्य अवसरों पर बहुत से परिवारों में आना-जाना रहता है। नाई को व्यवहार में चतुर माना जाता है। वह अनेक परिवारों के बारे में जानकारी भी रखता है। शायद वही मेरी शादी करवा दे। उसके ही गाँव के नाई ने कितने ही गरीब, बेसहारा और अपंग लड़के-लड़कियों की शादियाँ करवाई हैं। अतः वह उसके पास गया और बोला, "भैया, हमने तुम्हारी बहुत प्रशंसा सुनी है। तुमने अभी तक अनेक शादियाँ करवाई हैं, मेरी भी शादी करवा दो तो बड़ी कृपा होगी।"

नाई ने कहा, "राजा की बेटी से तुम्हारी शादी करवा दें ?"

मोहन ने कहा, "भैया ! क्यों मज़ाक करते हो ? मैं तो अपना घर बसाना चाहता हूँ, किसी साधारण लड़की से मेरा विवाह करवा दो।"

नाई ने कहा— मैं मज़ाक नहीं कर रहा हूँ। मैं तुम्हारी शादी राजा की बेटी से करवा दूँगा। तुम वैसा ही करना जैसा मैं कहूँ, बस।

मोहन ने कहा—ठीक है, बताओ मुझे क्या करना है।

नाई ने कहा—तुम धोबी के यहाँ से अच्छी-सी पोशाक माँगकर पहन लो। कहीं से सफेद अरबी घोड़ा ले आओ। पंद्रह-बीस गीदड़ इकट्ठे कर लो। बाकी सब मैं देख लूँगा।

मोहन ने यह सारी व्यवस्था कर ली। नाई ने शहर से बाहर एक बरगद के पेड़ के नीचे उससे रुकने को कहा और खुद दौड़ा-दौड़ा राजा के पास पहुँचा। उसने राजा के कान में कहा कि आपको जैसे वर की तलाश थी वैसा मिल गया है। वह किसी देश का राजा है। उसके पास धन-दौलत सब कुछ है। उसे दान दहेज कुछ नहीं चाहिए। उसकी एक ही शर्त है कि अँधेरा होने पर लड़की को डोली में बिठाकर शहर के बाहर बरगद के पेड़ के पास पहुँचा दिया जाए। लड़की के साथ और कोई न आए। लड़की वहीं से अपनी ससुराल चली जाएगी।
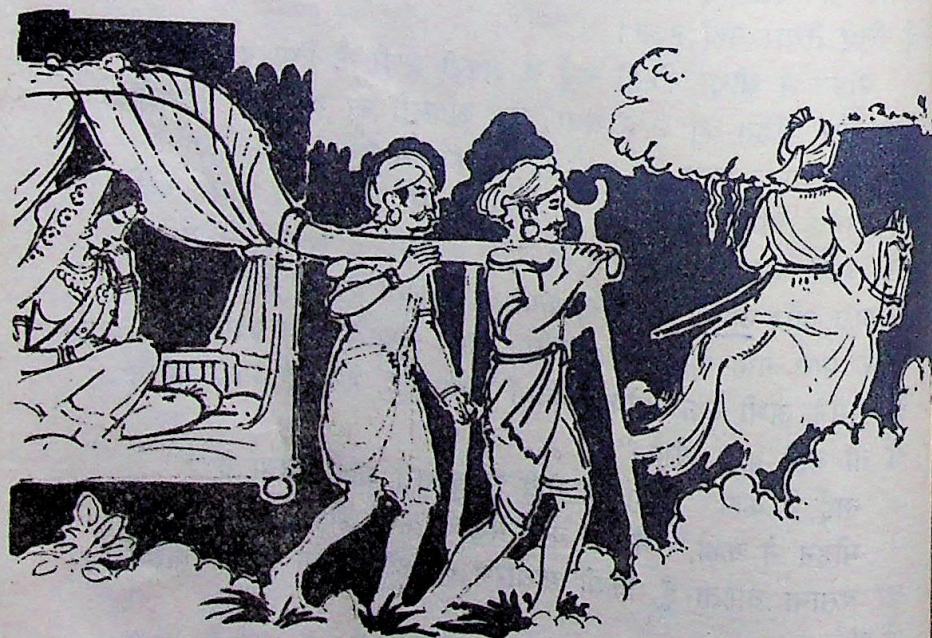
राजा अपनी बेटी की शादी के लिए बहुत परेशान था, क्योंकि उसकी सुंदर और गुणवंती बेटी को कोई भी व्यक्ति पसंद नहीं आता था। वह अपने से अधिक सुंदर और गुणवान व्यक्ति से शादी करना चाहती थी। राजा ने इस बार उससे कुछ नहीं पूछा। फिर भी वह अपनी बेटी को अकेली भेजने की बात से सहमत नहीं हो पा रहा था। उसने कहा—राजकुमार यहाँ क्यों नहीं आना चाहते ?

नाई ने समझाया—वे अपनी पूरी सेना के साथ बाहर डेरा डाले हुए हैं। दलबल के साथ आएँगे तो लोग समझेंगे, कोई आप पर हमला करने आ रहा है।

राजा को यह बात ठीक लगी। अँधेरा होने पर राजा ने बेटी को डोली में बिठाया और शहर से बाहर बरगद के पेड़ के पास भिजवा दिया। स्वयं महल के ऊपर खड़े होकर देखने की कोशिश की।

दूर खेत में सफेद पोशाक पहने कोई व्यक्ति सफेद घोड़े पर सवार था। गीदड़ों के शोर और घोड़ों की हिनहिनाहट सुनकर उसे लगा कि यह उसकी सेना की हलचल है। राजा ने चैन की साँस ली और महल से नीचे उतर आया।

आगे-आगे घोड़े पर सवार मोहन और पीछे-पीछे राजा की बेटी की डोली चली जा रहा थी। कुछ दूर चलने के बाद डोली एक टूटी हुई झोपड़ी के सामने रुक गई। राजा की बेटी ने उस झोपड़ी में प्रवेश किया। झोपड़ी के अंदर का दृश्य उसकी कल्पना के विपरीत था। उसे वहाँ एक मिट्टी का मटका तथा कुछ टूटे हुए बर्तन दिखाई दिए। यह सब देख कर वह बहुत दुखी हुई। सोचने लगी, यह सब क्या हो गया ? इसी सोच-विचार में कुछ दिन बीत गए। वह समझ गई कि उसके साथ धोखा हुआ है। वह अपना दुख किसी से न कह पाई। उसने संकल्प किया कि वह अपनी मेहनत, लगन, साहस तथा धैर्य के सहारे इन परिस्थितियों का सामना करेगी।

उसने अपने पति से कहा—आप कुछ काम कीजिए और धन कमाइए। इससे हम लोगों का जीवन अच्छी तरह व्यतीत हो सकेगा। पति ने उत्तर दिया मुझे तो कोई काम आता ही नहीं। यह सुनकर

राजकुमारी ने उससे एक सुई और धागा लाने के लिए कहा। उसका पति सुई और धागा ले आया।
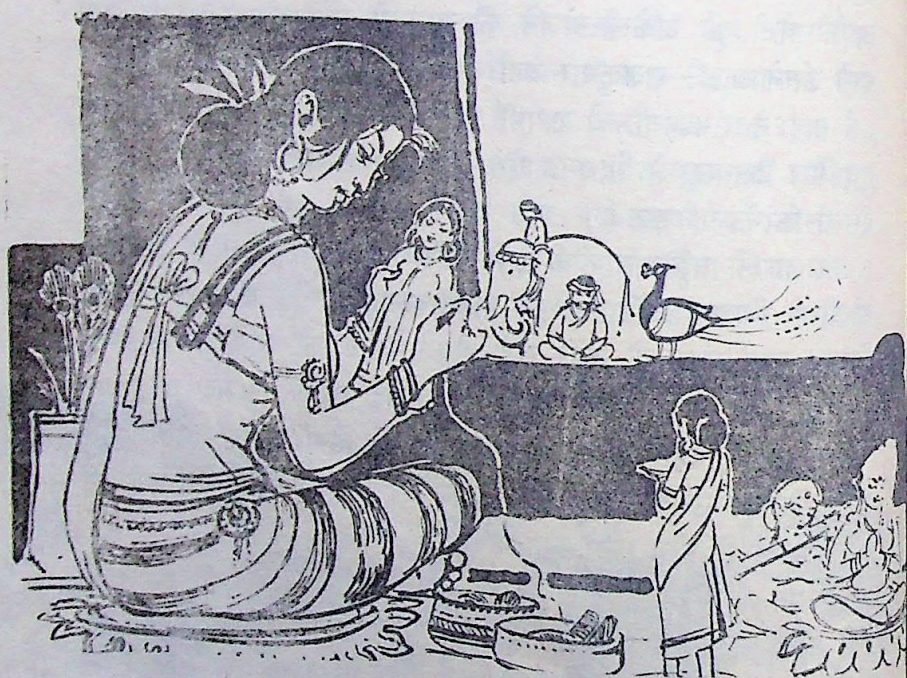
राजकुमारी ने अपनी सुंदर रेशमी साड़ी फाड़ कर, सुई और धागे की सहायता से सुंदर-सुंदर गुड़ियाँ बनाईं। उन गुड़ियों को अपने पति को देकर वह बोली—आप इन्हें बाजार में बेच आइए।

गुड़ियाँ बहुत सुंदर बनी थीं। अतः हाथों-हाथ अच्छे मूल्य पर बिक गईं। उन पैसों से कुछ सामान लाकर राजकुमारी ने कुछ मोर बनाए। मोर बेचने से भी अच्छे पैसे मिल गए। उन पैसों से रंग, लकड़ी तथा कुछ अन्य सामान लाकर उसने एक सुंदर घोड़ा बनाया। घोड़े के नीचे पहिए लगाए तथा उस पर चित्रकारी की। फिर उसे बेचने के लिए बाजार भेज दिया। दुकानदारों को घोड़ा बहुत पसंद

आया। घोड़ा अच्छे दामों में बिक गया। दुकानदारों ने राजकुमारी के पति से कहा कि तुम जितना पैसा चाहो हमसे पेशगी ले लो और हमें सुंदर-सुंदर खिलौने लाकर देते रहो।

राजकुमारी ने उन पैसों से और सामान मँगाया। अब दोनों मिलकर अच्छे-अच्छे खिलौने बनाने लगे। इस तरह उनका कारोबार बहुत अच्छा चल निकला। उन्होंने अब कुछ कारीगर भी रख लिए क्योंकि उनके खिलौनों की माँग बहुत बढ़ गई थी। धीरे-धीरे उनकी आय बहुत बढ़ गई। उन्होंने राजा के महल से भी बड़ा महल बनवाया। उसमें सुख-सुविधा के सभी साधन जुटा लिए।

एक बार शहर में कला तथा दस्तकारी की प्रदर्शनी लगाई गई। उस प्रदर्शनी में बड़े-बड़े कलाकारों ने भाग लिया। राजकुमारी ने भी एक सुंदर गुड़िया तैयार की। प्रदर्शनी में सभी ने उस गुड़िया की बहुत सराहना की।

पुरस्कार देने के लिए एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। पुरस्कार वितरण का कार्य राजा को ही करना था। प्रथम पुरस्कार लेने के लिए राजकुमारी को बुलाया गया। राजा और राजकुमारी ने एक दूसरे को पहचाना। राजकुमारी ने कहा कि आपने एक धोखेबाज नाई के चक्कर में फँसकर एक अनपढ़ और बेकार आदमी से मेरी शादी कर दी थी। परंतु अपने परिश्रम, सूझ-बूझ तथा दस्तकारी के सहारे मैंने जीवन में सफलता प्राप्त की है। बेटी की बात सुनकर राजा को अपनी गलती का अहसास हुआ। राजा ने कहा—बेटी ! हमें तुम पर गर्व है। तुम्हारी सफलता उन सभी के लिए प्रेरणादायक हो सकती है, जो बाधाओं और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं।

बोध-प्रश्न

1. मोहन का बचपन कैसा बीता ?
2. मोहन की शादी क्यों नहीं हो पा रही थी ?
3. मोहन अपनी शादी करवाने की प्रार्थना करने के लिए किसके पास गया ?
4. शादी के लिए राजा की बेटी की क्या शर्त थी ?
5. राजा की बेटी की डोली कहाँ रुकी ?
6. राजा की बेटी ने झोपड़ी के अन्दर क्या देखा ?
7. राजा की बेटी ने क्या संकल्प किया ?
8. उसने अपना संकल्प कैसे पूरा किया ?
9. राजा को नाई की धोखेबाजी का कब पता चला ?
10. इस कहानी से क्या शिक्षा मिलती है ?

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
सौतेली बहन	–दूसरी माँ के गर्भ से उत्पन्न बेटी
अपंग	–अंगहीन, जैसे –लँगड़ा या लूला

अरबी घोड़ा	—अरब का या अरबी नस्ल का घोड़ा
वर	—दूल्हा
गुणवंती	—गुणों या अच्छाइयों से पूर्ण
डेरा डाले	—सामान के साथ टिकना
दलबल	—शक्तिशाली समूह, सेना
हलचल	—खलबली
संकल्प	—प्रतिज्ञा
परिस्थिति	—चारों ओर की स्थिति
पेशगी	—पहले से दाम या मेहनताना दे देना
वितरण	—देना, बाँटना
अहसास	—अनुभव, अनुभूति
प्रेरणादायक	—प्रेरणा देने वाला

पौराणिक चित्र-कथा

प्रश्न और प्यास

पांडव जुए में हार गए थे। अब वे बनवास का जीवन व्यतीत कर रहे थे। गुप्त रहते हुए वे कभी कहीं निवास करते तो कभी कहीं। पांडवों ने कौरवों को वचन दिया था कि वे बारह वर्ष तक 'अज्ञात वास' करेंगे। यह चित्र-कथा उन्हीं दिनों की एक घटना पर आधारित है। पांडव वेश बदल कर 'द्वैत-वन' में निवास कर रहे थे। एक दिन दोपहर का समय था। गर्मी के दिन थे। पांडव वन में आखेट (शिकार) के लिए घूम रहे थे। उन्हें तेज़ प्यास लगी। पर आसपास कहीं भी पानी नहीं था। पाँचों पांडव प्यास से व्याकुल हो रहे थे।

दोपहर का समय

ओह! मुझे बड़ी प्यास लग रही है।
मुझे भी।

हम सभी को प्यास लगी है। क्या करें?
चिंता मत करो नकुल! पानी मिल जाएगा।

हमें अधीर नहीं होना चाहिए।

मैं वृक्ष पर चढ़ जाता हूँ।

अहा! कुछ दूर पर हरियाली धरती है।
तब तो वहाँ आस-पास पानी अवश्य होगा।
नहीं तो धरती हरी-भरी कैसे रहती?

हाँ! हमें उस ओर चलना चाहिए।

नकुल! तुम पूर्व की ओर जाओ
जो आज्ञा, भैया।

और नकुल पूर्व की ओर चल पड़ते हैं।
अरे! यहाँ तो स्वच्छ और शीतल जल का सरोवर है।

फिर पानी पीने के लिए सरोवर तक जाते हैं।

तभी एक आवाज़ उन्हें पानी पीने से रोकती है।
ठहरो! इस सरोवर के पानी को पीने का साहस न करो।

क्या देख रहे हो? इस जल पर मेरा अधिकार है।

नकुल उस अनजानी आवाज़ से चिल्ला कर पूछते हैं।

तुम कौन हो?
मैं इस सरोवर का पानी क्यों नहीं पी सकता?
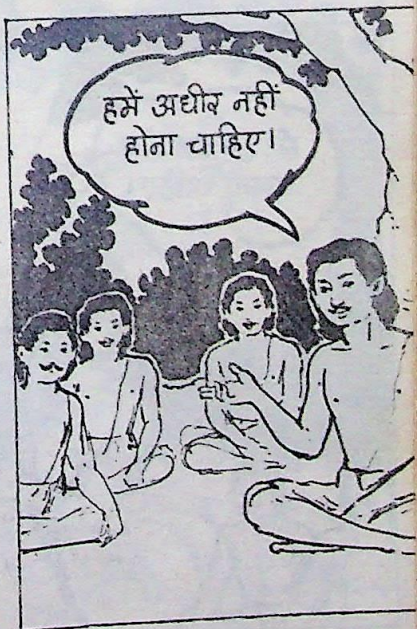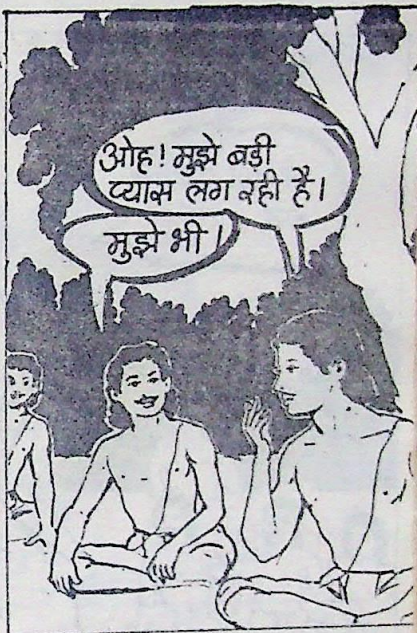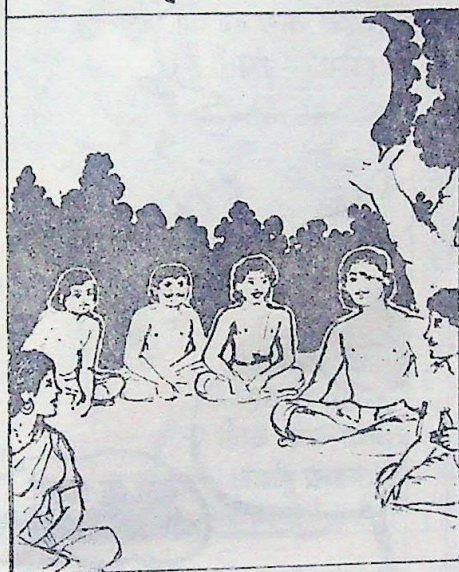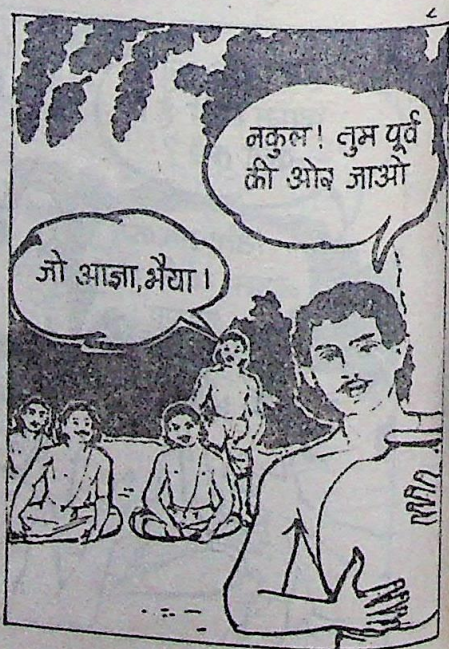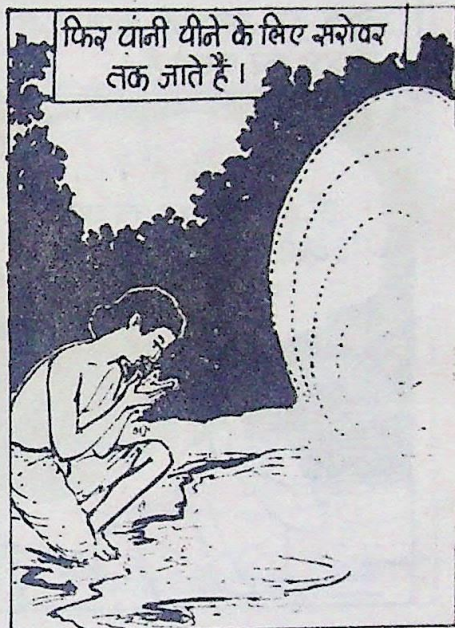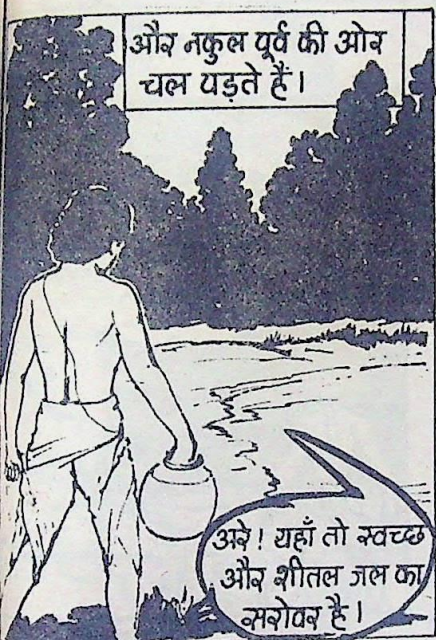
आवाज़ ने उत्तर दिया।

पर नकुल ने यक्ष की बात न मानी।

मुझे तो प्यास लगी है।
मेरा कंठ सूख रहा है।
पहले अपनी प्यास बुझा लूँ फिर तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दूँगा।

और वे पानी पीने लगते हैं।

आवाज़ फिर चेतावनी देती है।

ख़बरदार! मैं फिर कहता हूं। जल पीने का साहस मत करो। पहले मेरे प्रश्नों के उत्तर दो।
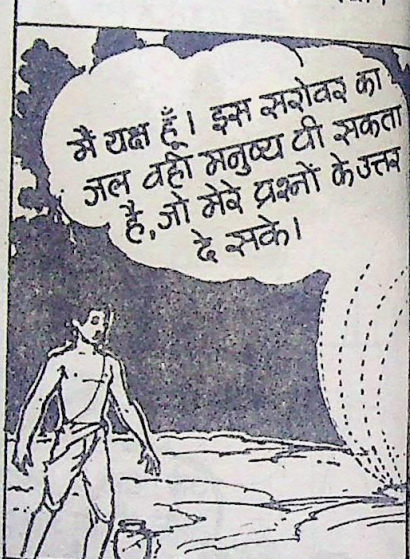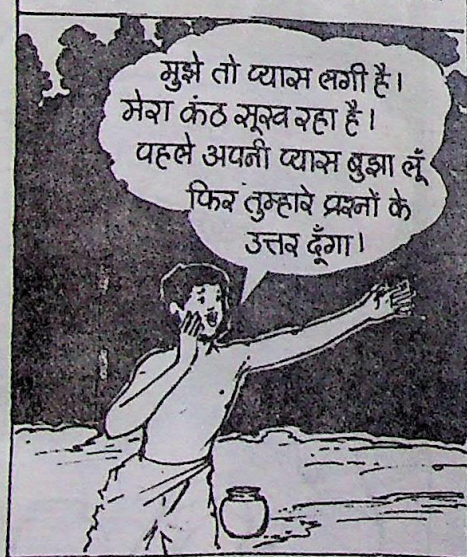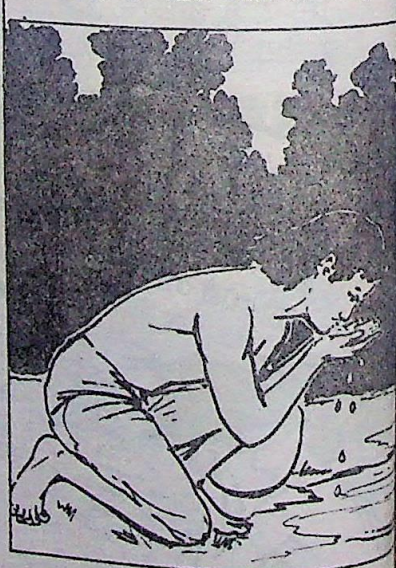
पर नकुल न माने। उन्होंने पानी पी लिया और धरती पर गिर पड़े।
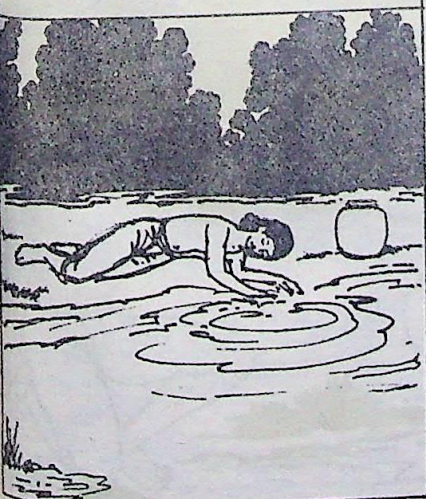
वहाँ पहुँच कर सहदेव नकुल को देखते हैं।
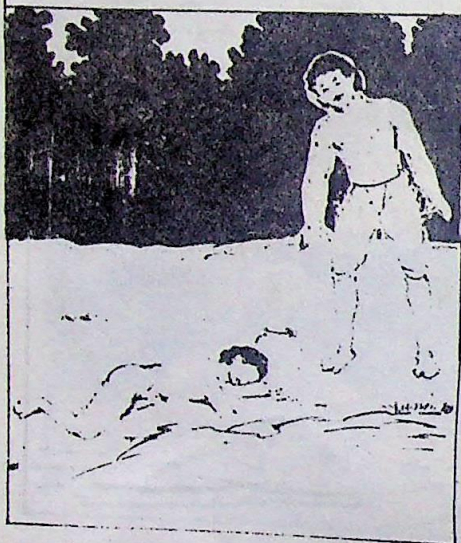
वे भी यक्ष की चेतावनी को अनसुना कर पानी पी लेते हैं।
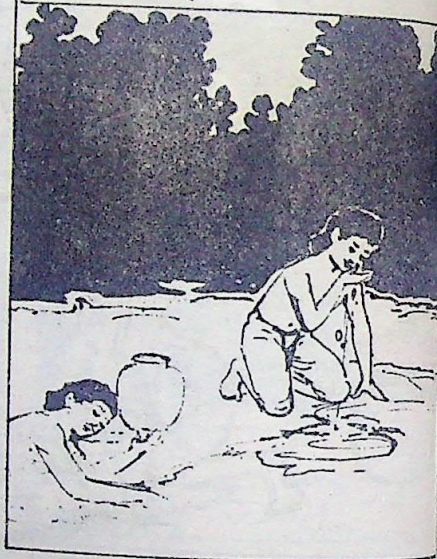
यक्ष की बात न मानने पर सहदेव भी अचेत हो कर गिर पड़े।

अर्जुन भी अपनी प्यास को रोक न सके। उन्होंने भी यक्ष की बात अनसुनी कर दी और उनका भी वही हाल हुआ।
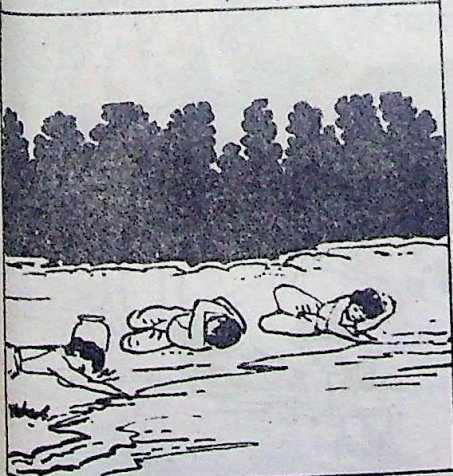
फिर भीम भाइयों को ढूँढने गए। भीम के साथ भी वही हुआ।

हे ईश्वर! मेरे चारों भाई कहाँ चले गए? किसी विपत्ति में तो नहीं फँस गए?

कर युधिष्ठिर भी उसी दिशा
चल पड़े।

अरे! यहाँ तो जल-ही-जल है। ओह! ये तो मेरे चारों भाई अचेत पड़े हैं। हाय! इन्हें क्या हो गया।

तुम्हारे भाइयों ने बिना मेरे प्रश्नों के उत्तर दिए पानी पीने का प्रयत्न किया, तभी इनका यह हाल हुआ।
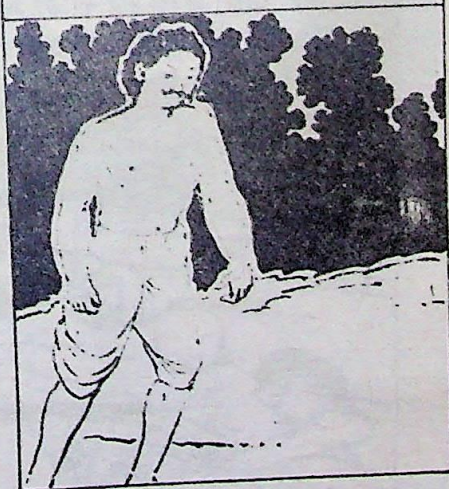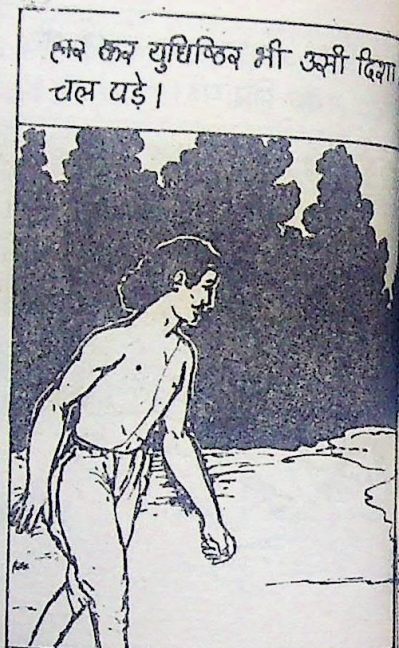
मैं यक्ष हूँ। जो मनुष्य मेरे प्रश्नों का उत्तर देगा वही इस सरोवर का जल पी सकता है।
मैं उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हूँ।
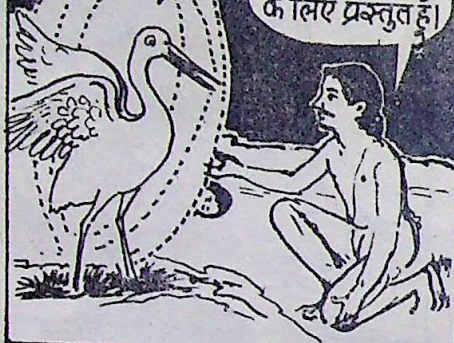
यह सुनते ही बगुला यक्ष बन कर पेड़ पर बैठ जाता है।
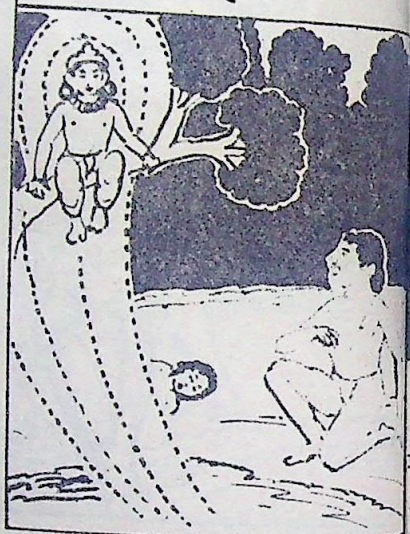
यक्ष! मैं स्वयं भी दूसरों की वस्तु ग्रहण करना पसंद नहीं करता। जल पर तुम्हारा ही अधिकार है।
मैं तुम्हारे इस विचार से प्रसन्न हुआ युधिष्ठिर!

मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दिए बिना जल कदापि न पिऊँगा। पूछो, क्या पूछना है?

सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि हज़ारों लोग रोज़ मरते हैं। यह देखकर भी जो जीवित हैं वे सोचते हैं कि उनकी मृत्यु कभी नहीं होगी।

मैं तुम्हारे उत्तर से संतुष्ट हुआ। अब दूसरा प्रश्न सुनो।
पूछो, यक्ष!

मनुष्य का साथ कौन देता है?
धैर्य ही मनुष्य का साथ देता है।

किसे त्याग कर मनुष्य सबका प्रिय बन जाता है?
अहंभाव से उत्पन्न गर्व को त्याग कर।

सर्वोत्तम लाभ क्या है?
आरोग्य।

इस तरह यक्ष ने कई प्रश्न पूछे। युधिष्ठिर ने सबका उचित उत्तर

उत्तरों से यक्ष प्रसन्न हो उठा।
राजन! तुमने मेरे प्रश्नों के उचित उत्तर दिए हैं। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम अपने भाइयों में से किसी एक का जीवन माँग सकते हो।
आप मेरे भाई नकुल को जीवित कर दें।

तुम ऐसा क्यों कह रहे हो राजन! वीर भीम और धनुर्धर अर्जुन का जीवन तुम क्यों नही माँग रहे हो?
यक्ष! इस चुनाव का
मेरा धर्म है। मैं अपना धर्म नही छोड़ सकता।

यक्ष स्वयं धर्मदेव थे।
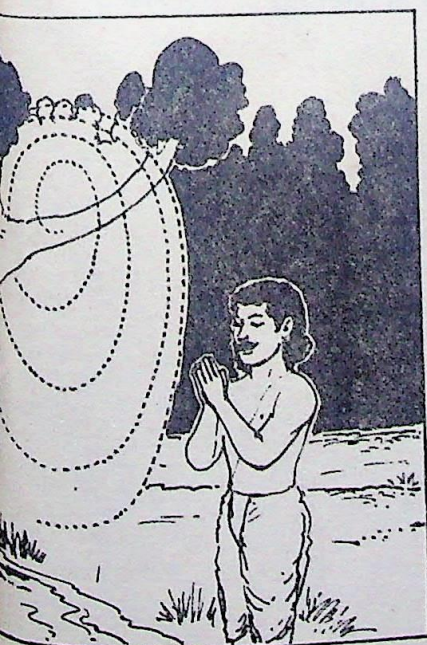
और देखते-देखते चारों भाई जीवित हो गए।

चलो भाइयो, हम अपनी प्यास बुझा लें।

और इस तरह पाँचों पांडवों ने अपनी प्यास बुझाई।
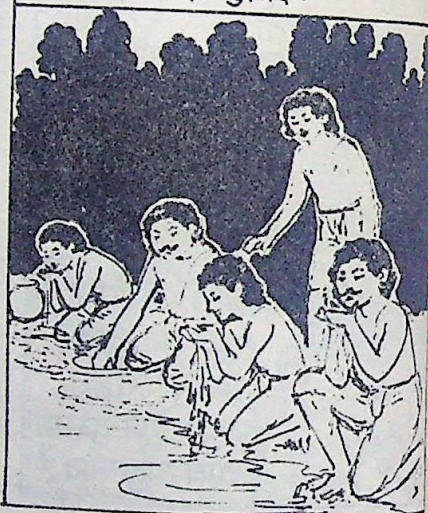
बोध-प्रश्न

1. पांडव अज्ञातवास क्यों कर रहे थे ?
2. अर्जुन ने कैसे अनुमान लगाया कि हरी-भरी धरती के निकट पानी होगा ?
3. यक्ष ने नकुल से पानी पीने की क्या शर्त बताई ?
4. यक्ष की बात न मानने पर चारों भाइयों का क्या हुआ ?
5. यक्ष ने युधिष्ठिर को भाइयों के अचेत होने का क्या कारण बताया ?
6. युधिष्ठिर के किस विचार से यक्ष प्रसन्न हुआ ?
7. 'सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है' इस प्रश्न का युधिष्ठिर ने क्या उत्तर दिया ?
8. युधिष्ठिर नकुल को ही जीवित क्यों देखना चाहते थे ?
9. यक्ष स्वयं कौन था ?
10. धर्मदेव ने युधिष्ठिर से क्या कहा ?

सच्चा हीरा

सूर्य अस्त हो रहा था। पक्षी चहचहाते हुए अपने-अपने नीड़ की ओर जा रहे थे। गाँव की कुछ स्त्रियाँ अपने-अपने घड़े लेकर कुएँ पर जा पहुँचीं। पानी भरकर कुछ स्त्रियाँ तो अपने घरों को लौट गईं परंतु चार स्त्रियाँ कुएँ की पक्की जगत पर ही बैठकर आपस में इधर-उधर की बातचीत करने लगीं। तरह-तरह की बातचीत करते-करते बात बेटों पर जा पहुँची। उनमें से एक की उम्र सबसे बड़ी लग रही थी, वह कहने लगी—भगवान सबको मेरे जैसा ही बेटा दे। मेरा बेटा लाखों में एक है। उसका कंठ बहुत मधुर है। वह बहुत अच्छा गाता है। उसके गीत को सुनकर कोयल और मैना भी चुप हो जाती हैं। लोग बड़े चाव से उसका गीत सुनते हैं। सच में मेरा बेटा तो अनमोल हीरा है।

उसकी बात सुनकर दूसरी स्त्री का भी मन हुआ कि वह अपने बेटे की प्रशंसा करे। उसने पहली से कहा—बहन, मैं तो समझती हूँ कि मेरे बेटे की बराबरी कोई नहीं कर सकता। वह बहुत ही शक्तिशाली और बहादुर है। वह बड़े-बड़े पहलवानों को भी पछाड़ देता है। वह आधुनिक युग का भीम है। मैं तो भगवान से कहती हूँ कि वह मेरे-जैसा बेटा सबको दे।

दोनों स्त्रियों की बात सुनकर तीसरी भला क्यों चुप रहती ? वह अपने को न रोक सकी। वह बोल उठी—तुम क्या कह रही हो बहन ? मेरा बेटा क्या है, साक्षात् बृहस्पति का अवतार है। वह जो कुछ पढ़ता है, एकदम याद कर लेता है। ऐसा लगता है मानो उसके कंठ में सरस्वती का वास हो।

तीनों की बात सुनकर भी चौथी स्त्री चुपचाप बैठी रही। उसका भी एक बेटा था। परंतु उसने अपने बेटे के बारे में कुछ नहीं कहा।

पहली स्त्री ने उसे टोकते हुए कहा—क्यों बहन, तुम क्यों नहीं कुछ बोल रही हो ? तुम्हारा भी तो बेटा है। तुम भी अपने बेटे के बारे में कुछ बताओ। चौथी स्त्री ने बड़े ही सहज भाव से कहा—मैं अपने बेटे की क्या प्रशंसा करूँ। वह न तो गंधर्व-सा गायक है, न भीम-सा बलवान और न ही बृहस्पति-सा बुद्धिमान।

जब वे घड़े सिर पर रखकर लौटने लगीं, तभी किसी के गीत का मधुर-स्वर सुनाई पड़ा। गीत सुनकर सभी स्त्रियाँ ठिठक गईं। पहली स्त्री को यह समझते देर न लगी कि वह मधुर स्वर उसी के बेटे का है। वह शीघ्र ही बोल उठी—मेरा हीरा गा रहा है। तुम लोगों ने सुना, उसका कंठ कितना मधुर है। तीनों स्त्रियाँ बड़े ध्यान से पहली स्त्री के बेटे को देखने लगीं। वह गीत गाता हुआ उसी रास्ते से निकल गया। उसने अपनी माँ की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया।

अभी पहली स्त्री का बेटा थोड़ी-ही दूर गया होगा कि दूसरी स्त्री का बेटा उधर से आता दिखाई दिया। दूसरी स्त्री उसे देखकर बड़े ही गर्व से बोली—देखो, वह मेरा लाड़ला बेटा आ रहा है। शक्ति और सामर्थ्य में इसकी बराबरी कौन कर सकता है ? वह बातें कर ही रही थी कि उसका बेटा भी उसकी ओर ध्यान दिए बगैर निकल गया।

थोड़ी ही देर में तीसरी स्त्री का बेटा भी उधर से संस्कृत के श्लोकों का पाठ करता हुआ निकला। उसके उच्चारण से ऐसा लग रहा था मानो उसके कंठ में सरस्वती का वास हो। तीसरी स्त्री ने बड़े गद्गद स्वर से कहा—देखो यह है, मेरी गोद का हीरा। इसे कौन बृहस्पति का अवतार नहीं कहेगा ? उसका बेटा भी बिना माँ की ओर देखे आगे बढ़ गया।

वह अभी थोड़ी-ही दूर गया होगा कि चौथी स्त्री का बेटा भी अचानक उधर से आ निकला। वह देखने में बहुत ही सीधा-सादा और सरल प्रकृति का लग रहा था। उसे देखकर चौथी स्त्री ने कहा—बहन, यही मेरा बेटा है।
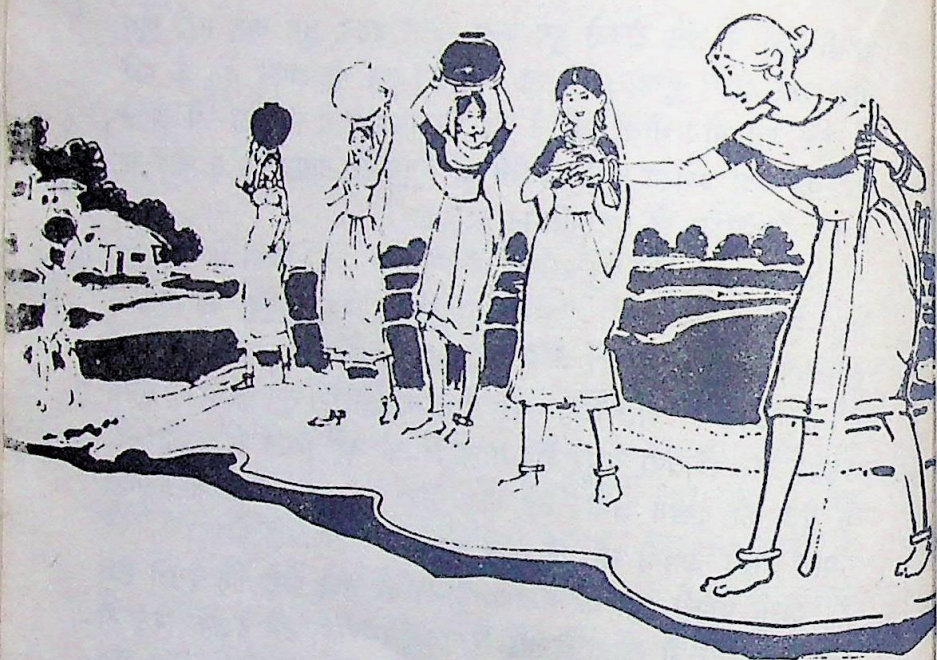
चौथी स्त्री उसके बारे में बता ही रही थी कि उसका बेटा पास आ पहुँचा। अपनी माँ को देखकर वह रुक गया और बोला—माँ, लाओ मैं तुम्हारा घड़ा पहुँचा दूँ। उसकी माँ ने मना करते हुए कहा—तू जा। मैं घड़ा स्वयं लेकर चली जाऊँगी। माँ के मना करने पर भी उसने माँ के सिर से पानी का घड़ा उतारकर अपने सिर पर रख लिया और घर की ओर चल पड़ा।

तीनों स्त्रियाँ बड़े ही आश्चर्य से चौथी स्त्री के बेटे को देखती रहीं। एक वृद्ध महिला बहुत देर से इन लोगों की बातें सुन रही थी। वह इनके बेटों को भी देख चुकी थी। इनके पास आकर वह बोली—देखती क्या हो ? यही सच्चा हीरा है।

बोध-प्रश्न

1. कुएँ की जगत पर बैठकर स्त्रियाँ किस विषय में बातें करने लगीं ?

2. पहली स्त्री ने अपने बेटे के बारे में क्या कहा ?
3. दूसरी स्त्री ने अपने बेटे की क्या-क्या विशेषताएँ बताईं ?
4. तीसरी स्त्री ने अपने बेटे को बृहस्पति का साक्षात् अवतार क्यों कहा ?
5. पहली स्त्री द्वारा पूछे जाने पर चौथी स्त्री ने क्या कहा ?
6. तीनों स्त्रियाँ क्यों ठिठक गईं ?
7. चौथी स्त्री के बेटे ने अपनी माँ के साथ कैसा व्यवहार किया ?
8. वृद्ध महिला ने तीनों स्त्रियों से क्या कहा ?
9. बच्चों को अपने माता-पिता के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ?

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
अस्त होना	—डूबना
नीड़	—घोंसला
कुएँ की पक्की जगत	—कुएँ के चारों ओर बना पक्का चबूतरा
कंठ	—गला
अनमोल	—जिसका कोई मूल्य न हो, इतना मूल्यवान कि कोई उसका मूल्य न चुका सके।
आधुनिक युग	—आज का समय, आधुनिक काल
साक्षात्	—आँखों के सामने, सचमुच
गंधर्व	—देवलोक के गायक
सामर्थ्य	—शक्ति, बल, क्षमता
गद्‌गद् होना	—खुश होना
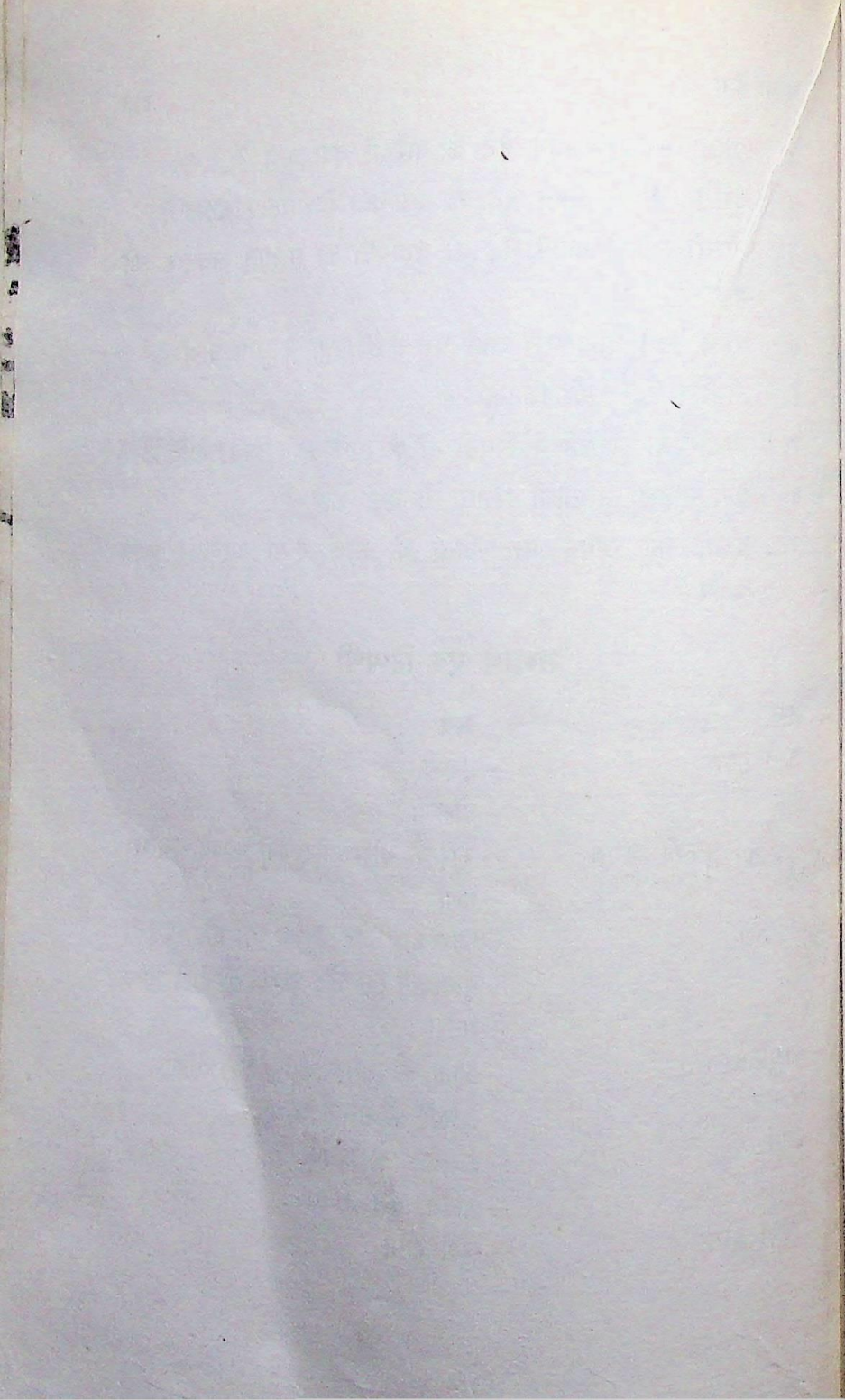
खंड IV

सांस्कृतिक एकात्मकता

भारतीय भक्तिधारा

यह मेरी पहली यात्रा नहीं थी, फिर भी मन उदास हो रहा था। जैसे ही माँ से विदा ली आँखें नम हो गईं। परंतु मद्रास तक पहुँचने के पहले ही उदासी गायब हो गई क्योंकि मैं दौड़ती हुई रेल में से उस प्राकृतिक सौंदर्य को देखता चला गया। मन उसमें इतना रमा कि घर की याद भी नहीं आई। जैसे ही मैं मद्रास स्टेशन पर उतरा तो नई भाषा और नई संस्कृति के दर्शन हुए। कुछ ही दिनों में मैं इस नए परिवेश में घुलमिल गया।

दक्षिण के विशाल मंदिरों का दर्शन कर मैं धन्य हो गया। त्यागराज की समाराधना का भक्ति एवं संगीत से सराबोर दृश्य देखा जिसका वर्णन करना कठिन है। हजारों कंठों से एक साथ उठते "एंदरो महानुभवुल्लु, अंदरिकी वंदनमुलु" इस भक्तिगीत को सुनकर ऐसा लगा जैसे भक्ति का पावन सोता यहीं से फूटा हो और सदियों से यहीं बहता आ रहा हो। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि भक्ति की यह भावना केवल दक्षिण में ही नहीं, बल्कि पूरे भारत में पाई जाती है।

यूँ तो भक्ति के सबसे पहले आचार्य जगद्गुरु शंकराचार्य थे परंतु बाद में रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य आदि ने भक्ति को दर्शन का आधार दिया। भक्ति के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए दक्षिण में आलवार संत जुट गए और उत्तर में रामभक्ति और कृष्णभक्ति के कई संप्रदाय स्थापित हुए। भक्ति-धारा को दक्षिण से उत्तर में लाने का श्रेय रामानंद जी को है। मैंने कहीं ठीक ही पढ़ा था कि "भक्ति उपजी द्राविड़े लाए रामानंद।" मद्रास आकर मुझे यह कथन सच ही लग रहा है।

हमने इतिहास में पढ़ा था कि 12वीं सदी के आसपास मुसलमान

भारत आ गए थे। उनके साथ ही इस्लाम धर्म भी भारत में आ गया। इस्लाम धर्म को मानने वालों ने यहाँ सूफ़ी आंदोलन चलाया। उन दिनों भारत में भक्ति आंदोलन की लहर चल रही थी। दोनों ने एक-दूसरे के विचार सुने, उनका स्वागत किया और दोनों ही पूरे भारत में फैल गए।

यात्रा भी क्या-क्या दर्शन कराती है। कुछ दिन हुए मैं राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र की यात्रा करके लौटा हूँ। अपनी यात्रा के दौरान मैंने पाया कि राजस्थान में यदि सूफ़ी संत मोइनुद्दीन चिश्ती की मान्यता है तो मीराबाई के कृष्ण-भक्ति के गीतों की गूँज भी। गुजरात में सूफ़ी महात्मा शाहआलम बुख़ारी का प्रभाव है तो वहाँ पर वल्लभाचार्य के भी अनेक अनुयायी हैं। महाराष्ट्र में विभिन्न पीरों की उपासना भी होती है और बारकरी संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम के अभंग भी हरेक की जुबान पर होते हैं। भक्ति का यह प्रभाव सभी स्थानों पर देखने को मिला। भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ हैं : संगीतमयता तथा जनभाषा।

यदि मैं यात्रा पर न निकला होता तो भक्ति के ऐसे मनोरम दर्शन कहाँ होते ! वास्तव में सभी भक्त और संत कवियों ने अपने विचारों को दोहों, सवैयों, अभंगों आदि गेय छंदों में बाँधा। सभी भक्तों ने फारसी तथा संस्कृत को छोड़कर जन-जन की भाषा को अपनाया। भारत के दक्षिण में त्यागराज, पुरंदरदास, अंडाल, बसवण भक्ति के गीत गुनगुनाते रहे और उत्तर में भी कबीर, सूर, तुलसी के गीत घर-घर में गाए जाते रहे। निज़ामुद्दीन औलिया जैसे सूफ़ी महात्मा की वाणी भी ध्यान से सुनी जाती रही। इस देश में पश्चिम में संत नामदेव, संत जनाबाई, नरसी मेहता और पूरब में चैतन्य महाप्रभु जैसे संत प्रभु भक्ति में डूबे हुए थे। इनके गीत, भजन, पद आज भी लोकप्रिय हैं।

"वैष्णव जन तो तैणें कहिए" जैसा भजन नरसी मेहता ने लिखा और "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" जैसा भक्ति गीत मीराबाई की देन है। संगीत में डूबी और जनभाषा में कही गई इन

भक्तों की वाणी का पूरे भारत में व्यापक प्रभाव पड़ा। उन्होंने जाति-पाँति तथा छुआछूत को समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। उस समय उनका नारा ही यह था :

"जाति-पाँति पूछे नहिं कोय।
हरि को भजे सो हरि का होय।।"

जो प्रायः मेरी जुबान पर चढ़ा रहता है।

सूफी और संतों के विचारों के आपसी आदान-प्रदान का परिणाम यह हुआ कि सूफियों ने हिंदुओं की प्रेमगाथाओं को ही अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया।

मैं अपनी यात्राओं में जहाँ-जहाँ गया मैंने पाया कि सभी भक्तों ने भगवान के प्रति प्रेमभावना पर बल दिया और दूसरों के दुख में दुखी होने की सीख दी। भक्ति आंदोलन के सभी भक्त सभी जीवों को समान भाव से देखने और सब प्राणियों पर दया करने का उपदेश देते थे। इन सबका व्यवहार बहुत सीधा-सच्चा था और वे धन इकट्ठा करने में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने झूठे दिखावे और बाह्य आडंबरों को चुनौती दी तथा सदाचार और मन की पवित्रता को महत्व दिया।

उनके उपदेशों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि पूरे भारत में लोग छोटे-बड़े के भेदभाव को भूल गए। उनमें आपसी भाईचारे की भावना पैदा हो गई। लोगों में धन के प्रति मोह कम हुआ और एक दूसरे की सहायता करने की भावना विकसित हुई। मेरे मन में प्रायः यह विचार उठता है कि आजकल भारत के लोगों में प्रेम और भाईचारे की कमी क्यों होती जा रही है ?

भक्ति आंदोलन ने हमारी आँखें खोलीं और हम हैं कि आँखें मूँद कर बैठ जाते हैं। हम जानते हैं कि राम-कृष्ण की भक्ति संबंधी रचनाएँ केवल पढ़ी ही नहीं गईं बल्कि वे भारतीय जीवन में रच-बस गई हैं। इस बात का जीवंत प्रमाण है कि मैं जहाँ-जहाँ भी गया मैंने देखा कि समस्त देश में रामलीला, कृष्णलीला और रासनृत्य आदि के

कार्यक्रम किसी न किसी रूप में आज भी हर्षोल्लास के साथ खेले जाते हैं।

राम और कृष्ण, भक्ति के दो ऐसे आधारस्तंभ रहे जिनके गीत पूरे भारत में गूँजते रहे। इन्हीं से लोग आपस में एक-दूसरे से जुड़ते रहे। राम तो जनता में इतने लोकप्रिय हुए कि उनकी गौरव-गाथा को गाने के लिए भारत के उत्तरी भाग में तुलसी लगे हुए थे, तो तमिलनाडु में कवि कम्बन। बंगाल में यह काम कृतिवास कर रहे थे तो महाराष्ट्र में एकनाथ। इसी तरह कृष्ण की रोचक कथा पूरे भारत में पढ़ी-सुनी जाती रही।

अपनी दक्षिण यात्रा के दौरान मुझे बहुत ही सुंदर मंदिर देखने को मिले। इस संबंध में आलवार संतों का उल्लेख आवश्यक है। इनके विषय में मैं यह और कहना चाहूँगा कि ये बारह संत विष्णु के परम भक्त थे। भक्ति भावना की परंपरा को आरंभ करने वाले इन भक्तों के गीत और कहानियाँ शहरों में व्यापारियों तथा गाँवों में किसानों के द्वारा जन-जन तक पहुँच गए।

भक्ति आंदोलन की झलक केवल साहित्य में ही नहीं बल्कि देश की सभी सांस्कृतिक गतिविधियों में दिखाई देती है। मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य आदि सभी में भक्ति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अंत में एक बात कहकर यात्रा वृत्तांत समाप्त करता हूँ कि भक्ति आंदोलन केवल धार्मिक आंदोलन ही नहीं था बल्कि उसका प्रभाव समाज के विचारों पर भी पड़ा। इन भक्तों ने समाज को जातियों में विभाजित करने का विरोध किया। नारी को पुरुषों के अनेक कार्यों में सहयोग देने के लिए प्रोत्साहित किया।

अब अपनी यात्रा से घर लौट रहा हूँ। सच मानिए, मुझे घर की याद नहीं आ रही बल्कि भक्ति का मधुर संगीत मेरे मन-मंदिर में गूँज रहा है। एक-के-बाद-एक भव्य मंदिरों के दृश्य आँखों में तैर रहे हैं। संपूर्ण भारत का यह भक्तिभाव मेरे मन में पूरी तरह समा गया!

बोध-प्रश्न

1. भक्ति आंदोलन में सूफी आंदोलन की प्रमुख देन क्या है ?
2. पाठ के आधार पर बताइए कि राम भक्ति का प्रचार पूरे देश में कैसे हुआ ;
3. आलवार संतों की वाणी जनता तक कैसे पहुँची ?
4. भक्ति आंदोलन के कवियों ने किन किन बातों पर बल दिया है ?
5. भक्ति आंदोलन किन कारणों से लोकप्रिय हुआ ?
6. सांस्कृतिक गतिविधियों में भक्ति का प्रभाव कहाँ-कहाँ दिखाई देता है ?

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
स्थानांतरण	— तबादला, ट्रान्सफर
त्यागराज	— दक्षिण के सुप्रसिद्ध संत और संगीतज्ञ
समाराधना	— भजन, कीर्तन द्वारा भक्ति
बारकरी	— विष्णु भक्तों (विट्ठल) का एक संप्रदाय
द्राविड़	— दक्षिण भारत से संबद्ध
रच-बस (जाना)	— समा जाना, मन पर छा जाना

स्वतंत्रता-संग्राम की कहानी

15 अगस्त, 1947 को अपना देश स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हमने कैसी-कैसी लड़ाइयाँ लड़ीं, कितने बलिदान दिए, कितने अत्याचार सहे, कई बार असफल भी हुए। फिर कैसे सफल हुए ? इन सब बातों की एक कहानी है, एक इतिहास है। आइए, इस इतिहास की एक झलक देखें।

चालाक व्यापारी

सन् 1748 में कुछ यूरोपीय व्यापारी भारत आने लगे थे। इनमें पुर्तगाली, अंग्रेज़ और फ्रांसीसी थे। अंग्रेजों ने व्यापार करते-करते शासन पर भी कब्ज़ा कर लिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापार के साथ राज्यों को भी हड़पती चली गई।

सन् 1757 की बात है। उस समय बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला था। उसने कलकत्ता के गोदाम से सिपाही हटाने को कहा। अंग्रेज चालाक तो थे ही कई तरह के बहाने बनाकर लड़ाई का अवसर ढूँढ़ने लगे। प्लासी का युद्ध हुआ। इसमें सिराजुद्दौला अंग्रेजों से हार गया। इसके उपरान्त तो अंग्रेज छल-कपट से देश की दौलत लूटते रहे और अपनी सत्ता का विस्तार करते रहे। जनता भूखी-नंगी कराहती रही। मैसूर के टीपू सुल्तान, कित्तूर की रानी चेन्नम्मा, असम के राजा तीरोत सिंह आदि अनेक शासकों ने अंग्रेजों का विरोध किया। कुछ अन्य देशभक्त भी सामने आए परंतु अंग्रेजों के सामने किसी की न चली। बस, भीतर-ही-भीतर विद्रोह की ज्वाला अवश्य सुलगती रही।

पहला स्वतंत्रता-संग्राम

सन् 1857 में स्वतंत्रता की पहली आग भड़की जिसे ब्रिटिश सरकार ने सिपाहियों का गदर बताया। बंगाल की बैरकपुर छावनी में भारतीय सिपाही मंगल पांडे ने विद्रोह कर दिया। उसने चर्बी लगे

कारतूसों का उपयोग करने से मना कर दिया। बात बढ़ने पर एक अंग्रेज अफसर को गोली से उड़ा दिया। यह समाचार मेरठ छावनी पहुँचा। वहाँ भी सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। दो दिन में ही सैनिकों ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। मुगल सम्राट बहादुरशाह ज़फ़र को एक बार फिर सारे भारत का बादशाह घोषित कर दिया गया। उत्तर भारत में पंजाब से लेकर दक्षिण की नर्मदा नदी तक, पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम के राजपूताना तक सभी ने इस विद्रोह में सैनिकों का साथ दिया। 1857 की क्रांति के प्रमुख कर्णधार थे—राव तुलाराम, तात्याटोपे, नाना साहब पेशवा, मौलवी अहमदशाह, कुँअर सिंह, बेगम हजरत महल और झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई।

wife of Nawab Wajid Ali Shah, the last Nawab of Oudh.

चित्र 22. सन् 1857 की क्रांति में अंग्रेजों से लड़ते हुए रानी लक्ष्मीबाई

4
3
5

इस विद्रोह को अंग्रेजों ने निर्दयतापूर्वक कुचल दिया। रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से लड़ते-लड़ते शहीद हो गईं। यह आंदोलन असफल तो अवश्य हो गया, परंतु इसने कम्पनी शासन की जड़ें हिला दीं। इसके बाद कम्पनी का शासन भारत में समाप्त हो गया। अब सत्ता सीधे ब्रिटिश सरकार के हाथों में आ गई।

पुनर्जागरण

सत्ता में परिवर्तन हुआ। भारतीयों को खुश करने के लिए कुछ अच्छे वादे भी किए गए, परंतु अंग्रेजों के रंग-ढंग में कोई परिवर्तन नहीं आया। अब इंग्लैंड के राजा या रानी द्वारा नियुक्त वाइसराय शासन चलाते थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषा, वेशभूषा और रहन-सहन का प्रचार करके भारतीयता को ही समाप्त करने की कोशिश की। वे भारतीयों को नीची नज़र से देखते थे। वे नहीं चाहते थे कि भारतीयों में आत्म-विश्वास जगे, वे कभी यह भी सोचें कि अपना शासन आप चला सकते हैं। तरह-तरह के कर (टैक्स) लगाए गए। लोगों का आर्थिक शोषण किया गया।

अंग्रेज भारतीयों को दबाने का जितना प्रयत्न करते रहे, उतना ही भारतीयों के मन में स्वतंत्र होने की इच्छा प्रबल होती गई। धीरे-धीरे एक राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हुआ। राजा राम मोहनराय, स्वामी विवेकानंद, महादेव गोविन्द रानाडे, एवं महर्षि दयानंद ने धार्मिक और सामाजिक सुधार लाने के लिए आंदोलन चलाए। लेखकों, कवियों और कलाकारों ने न केवल अंग्रेजों के अत्याचारों का विरोध किया बल्कि उन्होंने भारतीय समाज में फैली बुराइयों जैसे— बाल विवाह, सती-प्रथा, छुआछूत, जात-पाँत आदि का भी विरोध किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी को राष्ट्रभाषा माना और हिंदी-संस्कृत की शिक्षा देने के लिए गुरुकुल खोले।

← चित्र 23. सन् 1857 के अमर सेनानी
1. कुँअर सिंह, 2. बहादुर शाह ज़फर, 3. रानी लक्ष्मी बाई, 4. नाना साहेब, 5. तात्या टोपे, 6. क्रांतिकारी सिपाही मंगल पांडे।

कवियों और लेखकों ने भी अपनी कविताओं और लेखों द्वारा जनता में आज़ादी की भावना जागृत की। इनमें भारतेन्दु हरिश्चंद्र, सुब्रह्मण्यम भारती, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', प्रेमचंद, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय आदि प्रमुख थे। इन सुधारकों और साहित्यकारों ने अंग्रेजों के ज़ोर-जुल्म के होते हुए भी लोगों के मन से भय को निकालने और विद्रोह की भावना भरने का काम किया।

पंजाब में नामधरी संप्रदाय के लोग 'कूका' कहे जाते थे जिनमें से अधिकांश महाराजा रणजीत सिंह के पुराने सैनिक थे। अपने गुरु रामसिंह के नेतृत्व में उन्होंने अंग्रेजों से टक्कर लेने की योजना बनाई। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा, रेल, डाक आदि का बहिष्कार किया। अंग्रेजों ने उन्हें निर्दयतापूर्वक कुचल दिया और उनके गुरु रामसिंह को भी बहादुरशाह की ही भाँति रंगून में कैद कर लिया।

अंग्रेजों की इस निर्दयता के दौर में कुछ ऐसी बातें भी हुईं जिनसे एकता को और अधिक बल मिला। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से लोग विश्व के घटनाक्रम से भी परिचित होने लगे। परिणामस्वरूप हमारे देश के अखबारों ने देशभक्ति और सरकार के जुल्मों का खूब प्रचार किया।

काँग्रेस की स्थापना

सन् 1885 में भारतीय काँग्रेस की स्थापना हुई। इससे राष्ट्रीय चेतना और पुनर्जागरण को एक नया मंच मिला। काँग्रेस की पहली सभा 1889 में बंबई में हुई। इसमें देश के सभी भागों से अनेक नेता आए। तैयब जी, दादा भाई नौरोजी, फिरोज़शाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि सभी इसमें सम्मिलित हुए। सन् 1905 तक काँग्रेस के नेता राजभक्ति की दुहाई दे रहे थे। 1906 में दादा भाई नोरौजी तीसरी बार काँग्रेस के अध्यक्ष बने। उन्होंने 'स्वदेशी' और 'स्वराज' का एक नया मंत्र दिया। इन्हीं दिनों अंग्रेजों ने बंगाल का विभाजन कर दिया। इससे जनता में एक नया असंतोष छा गया।

इन्हीं दिनों मिस्र, फ्रांस, तुर्की और रूस में आज़ादी के सफल आंदोलन हुए। अनेक छोटे-छोटे देश अपनी आज़ादी के लिए संघर्ष

कर रहे थे। भारतीयों में भी यह भावना पनपी कि आज़ादी मनुष्य का अधिकार है और उसके लिए युद्ध भी किया जा सकता है। बाल गंगाधर तिलक, रासबिहारी बोस, विपिनचंद्र पाल और लाला लाजपतराय जैसे कुछ नेताओं का विचार था कि अंग्रेज सीधे तरीके से नहीं मानेंगे। कोई सख़्त कार्यवाही की जाए। तिलक ने घोषणा की—"स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वतंत्रता जैसे मिले, हमें लेनी चाहिए।" नरम नीति वाले नेता कहते थे—"हम सरकार के कामों में अधिक दखल न दें। केवल अपना हक माँगें।"

अब महात्मा गाँधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट आए थे। दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों की रंग-भेद-नीति के विरुद्ध उन्होंने अहिंसात्मक आंदोलन चलाया। गाँधी जी ने जो तरीका बताया उसका प्रभाव सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में हुआ। अनेक लोग उससे प्रभावित हुए। डा. राजेंद्र प्रसाद, मौलाना अबुलकलाम आज़ाद, वल्लभभाई पटेल, मोतीलाल नेहरू और उनके पुत्र जवाहरलाल नेहरू जैसे अनेक लोग गाँधीजी के अनुयायी बन गए।

जलियाँवाला बाग

सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया था। युद्ध में भारतीयों का सहयोग लेने के लिए अंग्रेजों ने कुछ सुधारों की घोषणा की थी। जब युद्ध समाप्त हो गया तो अंग्रेज सुधारों की बात भूल गए। उन्होंने युद्धकालीन नियम जारी रखे। इसके लिए उन्होंने "रौलट एक्ट" पास कर दिया। सारे भारत में "रौलट एक्ट" का विरोध हुआ। जगह-जगह सभाएँ हुईं।

13 अप्रैल, 1919 को ऐसी ही एक सभा अमृतसर के जलियाँवाला बाग में हुई। लगभग 20 हजार स्त्री-पुरुष, बूढ़े और बच्चे इकट्ठे थे। अंग्रेज जनरल डायर ने इन निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चलवा दीं। हजारों स्त्री-पुरुष मारे गए। अनेक लोग घायल हुए। इस हत्याकांड से सारा देश सन्न रह गया।

भारत की स्वतंत्रता के लिए कुछ प्रवासी भारतीयों ने भी अनेक आंदोलन चलाए। अमरीका, कनाडा, जर्मनी, सिंगापुर, अफगानिस्तान

आदि देशों में देश-भक्तों ने अंग्रेजी-सत्ता से भारत को मुक्त कराने की अनेक योजनाएँ बनाईं। प्रायः सभी का स्तर क्रांतिकारी था। लाला हरदयाल ने सैन्फ्रांसिस्को में गदर पार्टी की स्थापना की और "गदर" अखबार प्रकाशित किया। उन्होंने अंग्रेजों का प्रखर विरोध करने के लिए लोगों को ललकारा और भारत में क्रांतिकारियों के लिए हथियार भेजे। यही काम विदेशों में श्रीमती भीखाईजी कामा ने भी किया। उन्होंने भी क्रांतिकारियों के लिए भारत में हथियार भेजे।

असहयोग आंदोलन

युद्ध के उपरांत ब्रिटिश सरकार ने जो कुछ किया, उससे गांधीजी भी बहुत दुखी हुए। 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। महात्मा गांधी ने कहा—"अब ब्रिटिश सरकार से सहयोग संभव नहीं। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अब हमारे द्वारा अहिंसात्मक असहयोग की नीति अपनाई जानी चाहिए।" नागपुर अधिवेशन में पुनः यह प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हुआ। इस अधिवेशन में स्पष्ट कहा गया कि कांग्रेस का लक्ष्य "पूर्ण स्वराज" है।

सन् 1921 में गांधी जी ने भारतीय जनता के बीच असहयोग आंदोलन की घोषणा की। इस आंदोलन का व्यापक प्रभाव हुआ। देखते ही देखते लोगों ने सरकारी नौकरियाँ छोड़ दीं। वकीलों ने वकालत छोड़ी, विद्यार्थियों ने स्कूल-कालेज छोड़ दिए। लोगों ने विदेशी वस्त्रों और शराब की दुकानों पर धरने दिए। स्वदेशी माल का सम्मान बढ़ा, हथकरघा एवं बुनाई को प्रोत्साहन मिला। खादी का प्रचार-प्रसार हुआ। इस आंदोलन में सभी ने कंधे-से-कंधा मिलाकर भाग लिया। जैसे-जैसे आंदोलन बढ़ा, सरकार ने इसे कुचलने का प्रयास किया। स्वयंसेवकों और सत्याग्रहियों पर कोड़े बरसाए गए। हज़ारों लोगों को जेलों में बंद कर दिया गया। इस पर भी जब आंदोलन न दबा तो सरकार ने काँग्रेस को गैर-कानूनी घोषित कर दिया।

साइमन कमीशन का बहिष्कार

स्वाधीनता आंदोलन दिन-प्रति-दिन तीव्र होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में सात सदस्यों का

राजकीय कमीशन नियुक्त कर दिया। अंग्रेजों ने कहा, यह कमीशन तय करेगा कि भारतीय अपना शासन आप करने योग्य हैं, अथवा नहीं। इसी उद्देश्य से 1928 में साइमन कमीशन भारत आया। सारे देश में इस कमीशन का विरोध किया गया। विरोध की ऐसी ही एक सभा में लाला लाजपतराय पुलिस की लाठी से घायल हुए और उनकी मृत्यु हो गई। लाला जी की मृत्यु ने इस आंदोलन में घी का काम किया। इससे विरोध की ज्वाला और भड़क उठी।

नमक कानून और डांडी यात्रा

दिसम्बर 1921 में कॉंग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ। जवाहरलाल नेहरू इस अधिवेशन में सभापति चुने गए। इसमें यह घोषणा की गई कि जनता का यह दृढ़ संकल्प है कि वह "पूर्ण स्वराज" लेकर रहेगी। पूर्ण स्वराज के अलावा वह और कुछ स्वीकार करने को तैयार नहीं है।" 26 जनवरी, 1930 को भारत की जनता ने पूर्ण स्वराज के लिए लड़ने के अपने संकल्प का ऐलान किया। तय किया गया कि यह आंदोलन बहुत बड़ा और व्यापक होगा। गांधीजी इसके नेता होंगे। सारा भारत उनका अनुसरण करेगा और उनके आदेशों का पालन करेगा। सरकार ने अपने लाभ के लिए नमक बनाने पर प्रतिबंध लगा रखा था। यह कानून भारतीय जनता के प्रतिकूल था। गांधी जी ने आंदोलन का प्रारंभ इसी कानून को तोड़ कर किया।

उन्होंने 12 मार्च, 1930 को डांडी यात्रा शुरू की। वे अपने सहयोगियों के साथ डांडी पहुँचे। उन्होंने नमक कानून को भंग किया। फिर तो जगह-जगह 'नमक कानून' को तोड़ा गया। 5 मई, 1930 को गांधी जी सहित सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इससे आंदोलन और तेज हो गया। इसमें महिलाओं और मजदूरों ने भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया।

स्वतंत्रता संग्राम में क्रांतिकारियों का योगदान

स्वतंत्रता-संग्राम में क्रांतिकारियों की प्रमुख भूमिका रही। प्रारंभ में क्रांतिकारी आंदोलन का मुख्य क्षेत्र बंगाल था। वहाँ के प्रमुख नेता थे वारीन्द्र कुमार घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त तथा श्री अरविन्द। उनका कहना

चित्र 24. स्वतंत्रता संग्राम में — 1. डांडी यात्रा, 2. विदेशी वस्त्रों की होली, 3. अंग्रेजो भारत छोड़ो, 4. नमक आंदोलन, 5. विद्यार्थी आंदोलन (8 अगस्त)

था कि देश में अंग्रेजों की संख्या 1.5 लाख है। यदि हम अपने संकल्प में दृढ़ हैं तो एक ही दिन में भारत से अंग्रेजी-राज्य समाप्त कर सकते हैं। वे कहते थे—"देश के लिए आप अपने प्राण दीजिए, पर पहले शत्रु के प्राण लीजिए।"

क्रांतिकारियों की यह विचारधारा भी प्रारंभ में बड़ी तेजी से फैली। वे अंग्रेजी सत्ता के दुश्मन थे, अंग्रेजों के नहीं। पर सत्ता
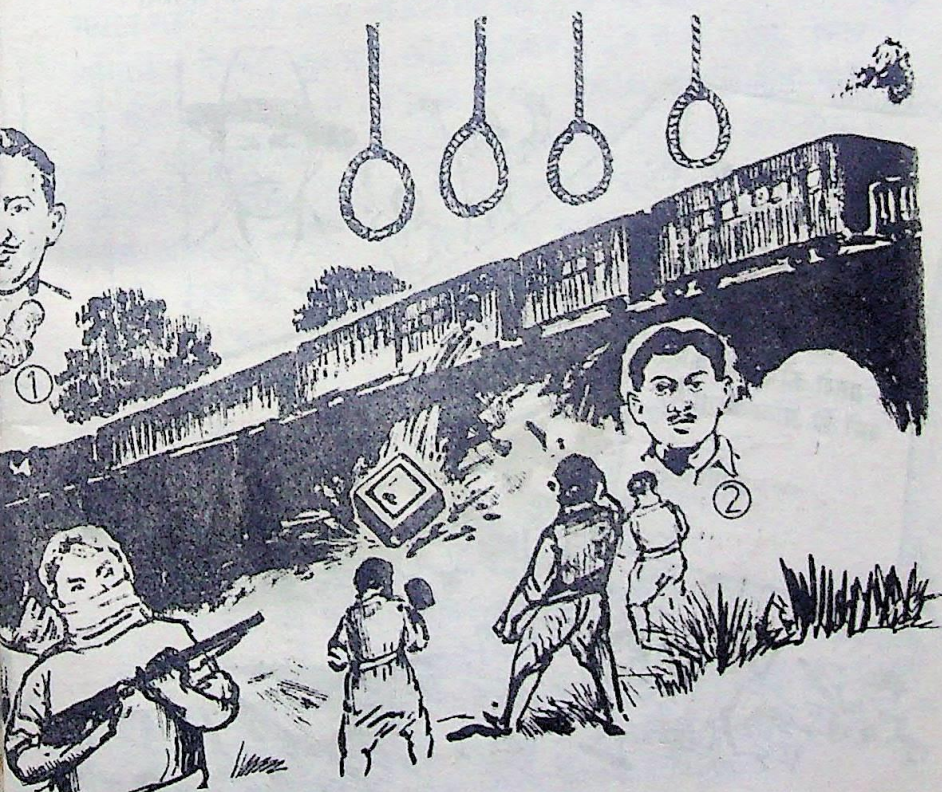
चित्र 25. 9 अगस्त 1925 को हुए काकोरी काण्ड में शहीद हुए—
1. राम प्रसाद बिस्मिल, 2. अशफाक उल्लाह आदि।

छीनने के लिए मरने-मारने को प्रस्तुत थे। महाराष्ट्र में क्रांतिकारी आंदोलन के नेता श्यामजीकृष्ण वर्मा, सावरकर बन्धु, दामोदर चाथेकर और वसुदेव बलवंत कड़के थे। इन सबका स्पष्ट मत था कि अंग्रेजों को समाप्त कर देने में ही देश का भला है।

मद्रास में विपिनचंद्र पाल और आंध्र में सुभाषचंद्र बोस ने क्रांतिकारी आंदोलन का नेतृत्व किया। पंजाब में भाई परमानंद, लाला हरदयाल, अजीत सिंह तथा लाला लाजपतराय ने क्रांतिकारी विचारधारा का विकास किया। आंध्र में अल्लूरि सीतारामराजु ने अंग्रेजों के विरुद्ध छापामार-लड़ाई लड़ी और अपनी वीरता से अंग्रेज शासकों को आतंकित कर दिया। उन्होंने आंध्र की जनता में देश-प्रेम को जगाया।

चित्र 26. 8 अप्रैल 1929 को केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंका गया। प्रमुख क्रांतिकारी थे : 1. भगतसिंह, 2. सुखदेव, 3. राजगुरु।

क्रांतिकारियों के इतिहास में "काकोरी काण्ड" बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। क्रांतिकारियों को हथियार खरीदने के लिए पैसों की आवश्यकता थी। 1 अगस्त, 1925 को उन्होंने काकोरी के पास गाड़ी को रोक कर सरकारी ख़जाना लूट लिया। इस केस में 40 लोगों को गिरफ्तार किया गया। जिनमें से रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशन सिंह तथा अशफाक उल्लाह खाँ को फाँसी की सज़ा दी गई। चंद्रशेखर आज़ाद भी इस काण्ड में थे, लेकिन सरकार उन्हें पकड़ नहीं पाई।

क्रांतिकारियों में सरदार भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इन्होंने योजना बनाकर सांडर्स को गोली मारी। यही सांडर्स लाला लाजपतराय की मृत्यु का कारण था। सरदार भगतसिंह ने बड़ी कुशलता और योजनाबद्ध ढंग से 8 अप्रैल, 1929 को केंद्रीय असेम्बली में बम फेंका। वे बम फेंककर वहाँ से भागे नहीं, बल्कि भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने स्वयं को गिरफ्तार करा लिया। मुकदमे के दौरान भगतसिंह ने कहा—"स्वतंत्रता व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है, इस उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिए हम कुछ भी कुर्बान करने को तैयार हैं।" असेम्बली में फेंके गए पर्चे में लिखा हुआ था—"बहरों को सुनाने के लिए बमों की आवश्यकता है।" 23 मार्च, 1931 को सरदार भगतसिंह, शिवराम, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दे दी गई। फाँसी के फंदे तक जाते समय वे यह गीत गाते रहे—

"दिल से न निकलेगी मरकर भी वतन की उल्फत।
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आया करेगी।"

भगतसिंह की फाँसी के बाद क्रांतिकारी दल का नेतृत्व चंद्रशेखर आज़ाद के हाथों में आ गया। 27 फरवरी, 1931 को वे अल्फ्रेड पार्क, इलाहाबाद में अपने साथी से बात कर रहे थे। तभी पुलिस ने उन्हें घेर लिया। वे आखिरी दम तक लड़ते रहे और लड़ते-लड़ते ही भारत माँ के चरणों में अपना जीवन अर्पित कर दिया।

सुभाषचंद्र बोस और उनकी आज़ाद हिंद फौज

सुभाषचंद्र बोस प्रारंभ में काँग्रेसी थे। बाद में वे असहयोग

चित्र 27. सुभाषचंद्र बोस व उनकी आज़ाद हिंद फौज़

आंदोलन के स्थान पर सशस्त्र-क्रांति के समर्थक हो गए। वे सरकार को चकमा देकर 1941 में अफगानिस्तान गए। वहाँ से रूस होते हुए जर्मनी पहुँचे। हिटलर से मिले। हिटलर ने उन्हें हर प्रकार के सहयोग का आश्वासन दिया। जर्मनी से वे सिंगापुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने रास बिहारी बोस के साथ 21 अक्तूबर, 1943 को "आजाद हिंद सरकार" की घोषणा की। सुभाष "आजाद हिंद सरकार" के राष्ट्रपति और "आज़ाद हिंद फौज" के सर्वोच्च सेनापति बने। उनके द्वारा दिए गए तीन नारे बहुत प्रसिद्ध हैं—"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा", "दिल्ली चलो" और "जयहिंद।" वे अंग्रेजों से लड़कर अपना देश वापिस लेना चाहते थे। आज़ाद हिंद फौज ने नेताजी के नेतृत्व में असम मोर्चे पर जमकर युद्ध किया। भारत के मणिपुर राज्य के

दो-तिहाई भाग और समूचे नागालैण्ड पर विजय प्राप्त की। तिरंगा झण्डा फहराया गया। परिस्थितियाँ ऐसी आईं कि वे सफल नहीं हो पाए, परंतु उनके साहसी व्यक्तित्व ने स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयासों को अतिरिक्त शक्ति दी।

'भारत छोड़ो' आंदोलन

गांधीजी के नेतृत्व में आंदोलन सारे देश के जन-जन में फैल गया। आंदोलन भी चलता रहा और सरकारी दमनचक्र भी। जुलाई 1942 में काँग्रेस-कार्य-समिति की एक बैठक वर्धा में हुई। इसमें एक प्रस्ताव पारित कर अंग्रेजों से भारत छोड़ने की माँग की गई। स्थिति पर आगे विचार करने के लिए बंबई में बैठक हुई। 8 अगस्त, 1942 को गांधीजी ने अपना ऐतिहासिक "भारत छोड़ो" प्रस्ताव प्रस्तुत किया। डा. पट्टाभिसीतारमैया ने लिखा है: "प्रस्ताव पारित होने से पहले गांधीजी ने 70 मिनट तक जोशीला भाषण दिया। वास्तव में उस दिन गांधीजी एक अवतार या पैगंबर की प्रेरणाशक्ति से प्रेरित होकर भाषण कर रहे थे। उसी भाषण में उन्होंने देश की जनता को एक नारा दिया—'करो या मरो।' "

अगले दिन 9 अगस्त, 1942 को महात्मा गांधी सहित सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। काँग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। नेताओं के अभाव में जनता का मार्गदर्शन करने वाला कोई न रहा। लेकिन सामने एक आदर्श नारा था—"करो या मरो"। लोगों ने सरकारी नीतियों के खिलाफ जुलूस निकाले, प्रदर्शन आयोजित किए और हड़तालें कीं।

कुछ स्थानों पर विद्यार्थियों और युवा नेताओं ने अस्थाई सरकारें बनाईं। अहमदाबाद, मद्रास और बंगलौर की फैक्ट्रियों में हड़तालें हुईं। इससे लड़ाई का सामान बनना बंद हो गया। अनेक सरकारी इमारतों पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। कई क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया और राष्ट्रीय सरकारें काम करने लगीं। इन जगहों को वापिस लेने में सरकार को कई-कई सप्ताह लग गए।

सरकार ने इस आंदोलन को दबाने के लिए जनता पर अत्याचार

किए। कितनी ही जगह पूरे गाँव के लोगों को सजाएँ दी गईं। काँग्रेसी कार्यकर्ताओं के मकान जला दिए गए। उनके परिवारजनों को कठोर यातनाएँ दी गईं। सरकार ऊपरी तौर पर आंदोलन दबाने में सफल रही, परंतु भूमिगत आंदोलन बराबर चलता रहा। जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, श्रीमती अरुणा आसफ अली जैसे समाजवादी नेताओं ने भी इस आंदोलन में भाग लिया।

इस आंदोलन में देश की जनता ने असाधारण शक्ति का प्रदर्शन किया। क्रांति की संभावना भारतीय फौज में भी दिखाई देने लगी। नौ सेना ने तो इसकी शुरुआत भी कर दी। गोरे फौजियों और अफसरों का सड़क पर निकलना कठिन हो गया। छोटे-छोटे बच्चे तक उन्हें चुनौती देने लगे।

अंग्रेजों ने हिंदू-मुसलमानों में फूट डालने की जो नीति वर्षों से अपना रखी थी वह भी पनप रही थी। द्वितीय महायुद्ध समाप्त होते-होते अंग्रेज भी दलदल में फँस गए थे। विवश होकर ब्रिटिश मंत्रिमंडल ने तीन सदस्यों का "कैबिनेट मिशन" भारत भेजा। मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना अड़ गए कि मुसलमानों को अलग देश मिले। अन्यथा सीधी कार्रवाई की धमकी दी गई जो हिंदू-मुस्लिम दंगों के रूप में आरंभ हो गई। वायसराय ने जवाहरलाल नेहरू और उनके साथियों का केंद्रीय मंत्रिमंडल बनाया। डॉ. राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में संविधान-परिषद् भी बना दी गई।

अब तक ब्रिटिश सरकार के हाथ-पाँव फूल चुके थे। लार्ड माउंटबेटेन नए वायसराय बनकर भारत आए। अंत में माउंटबेटेन ने एक योजना रखी। उसके अनुसार देश के दो टुकड़े हो गए भारत और पाकिस्तान। स्वयं पाकिस्तान भी दो टुकड़ों में था जिनके बीच की दूरी डेढ़ हज़ार मील थी। अजीब बात थी कि जिस आज़ादी के लिए मुसलमान कंधे से कंधा मिलाकर लड़े, इसके मिलने तक उन्हें न चाहते हुए भी विभाजन का कड़वा घूँट पीना पड़ा।

सब के मिले-जुले प्रयास से 15 अगस्त, 1947 का दिन आया। हमारा देश स्वतंत्र हुआ। इसी दिन अर्धरात्रि में, संविधान सभा के

एक जलसे में जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"एक क्षण आता है, (जैसा कि इतिहास में बहुत कम आता है) जब हम पुराने से नए में प्रवेश करते हैं, जब कि एक युग का अंत होता है और एक राष्ट्र की वर्षों से कुचली गई आत्मा को वाणी मिलती है। यह उचित है कि इस महत्वपूर्ण क्षण में हम भारत की सेवा में और उससे भी बड़ी मानवता की सेवा में अपने को समर्पित करने की शपथ लें।"

बोध-प्रश्न

1. यूरोपीय व्यापारी भारत में कैसे आए ?
2. उन्होंने भारत में अपना प्रभुत्व किस प्रकार स्थापित किया ?
3. भारत में स्वतंत्रता-संग्राम किस प्रकार प्रारंभ हुआ ?
4. गांधीजी के असहयोग आंदोलन का वर्णन अपने शब्दों में करो।
5. भारतीय काँग्रेस की स्थापना कब और कैसे हुई ?
6. स्वतंत्रता आंदोलन के समय अन्य अनेक देश आज़ादी के लिए संघर्ष कर रहे थे उसका भारत पर क्या प्रभाव पड़ा।
7. भगतसिंह का स्वतंत्रता-संग्राम के आंदोलन में क्या योगदान रहा ?
8. सुभाषचंद्र बोस और उनकी "आज़ाद हिंद फौज" ने क्या भूमिका अदा की ?
9. विभिन्न प्रांतों के स्वतंत्रता-संग्राम-सेनानियों के कार्यों का उल्लेख करो।
10. भारत का बँटवारा क्यों हुआ ?

शब्दार्थ और टिप्पणी

शब्द	अर्थ
स्वतंत्रता-संग्राम	— देश की स्वतंत्रता के लिए किया जाने वाला देशव्यापी प्रयास

हड़पना — किसी दूसरे की वस्तु को ज़बरदस्ती ले लेना
सत्ता — शासन, अस्तित्व
विद्रोह — किसी ग़लत बात के विरोध में की जाने वाली लड़ाई
शहीद होना — देश या समाज के हित में प्राण त्यागना
पुनर्जागरण — पुनः + जागरण—फिर से सावधान होना, जाग जाना
आत्म-विश्वास — अपने अंदर विश्वास आना
आर्थिक शोषण — किसी की वस्तु या कार्य का उचित मूल्य न देना।
प्रबल — अत्यधिक
राष्ट्रीय चेतना — देश की उन्नति और सम्मान के लिए कार्य करने की भावना
आविर्भाव — प्रकट
बहिष्कार — संबंध तोड़ना, बाहर करना, बायकाट
अहिंसात्मक — बिना लड़ाई-झगड़े या मारपीट के
रंग-भेद-नीति — अंग्रेजों का रंग गोरा था अतः वे भारतीयों को काला समझकर अच्छा व्यवहार नहीं करते थे
अनुयायी — अनुसरण करने वाला
प्रखर — तीव्र
अधिवेशन — किसी कार्य विशेष के लिए आयोजित विशाल सभा
प्रोत्साहन — उत्साहित करना
हथकरघा — हाथ से चलाया जाने वाला करघा, जिससे कपड़ा बुना जाता है
ज्वाला भड़कना — विरोध की भावना उत्पन्न होना
प्रतिबंध — मनाही

आतंकित	— भयभीत
नेतृत्व	— किसी नेता द्वारा जनता को किसी दिशा की ओर ले जाना
जोशीला	— उत्साहपूर्ण
विवश	— मजबूर
अड़ जाना	— ज़िद करना
हाथ-पाँव फूल जाना	— डर जाना
कड़वा घूँट पीना	— अप्रिय बात सहन करना

भारतीय पर्व

जयप्रदा
गर्ल्स हॉस्टल, कमरा नं. 75
धर्मवंत विद्यालय
तिरुपति (आ.प्र.)
दिनांक: 20 अक्तूबर, 1992

प्रिय सखी सुगंधमाला

नमस्ते।

आशा है तुम स्वस्थ और सानंद होगी। 2 अक्तूबर का लिखा तुम्हारा पत्र मिला। मुझे खेद है कि काम में व्यस्त होने के कारण शीघ्र उत्तर न दे सकी।

तुमने अपने पत्र में अपने विद्यालय में 2 अक्तूबर को संपन्न गांधी-जयंती के संबंध में विस्तारपूर्वक लिखा है। पत्र पढ़कर बड़ा आनंद आया। गांधीजी हमारे राष्ट्रपिता थे। उनका जन्म दिन हमारा राष्ट्रीय पर्व है। उसे उत्साह के साथ मनाना चाहिए।

उन्होंने जो मार्ग बताया था उससे हमें प्रेरणा मिलती है। तुम जानती हो कि हमारे देश में अनेक धर्मों और संप्रदायों के लोग रहते हैं। इन महापुरुषों के जन्म-दिन को हम पर्व के रूप में मनाते हैं। "मिलाद-उन-नबी" हज़रत मोहम्मद साहब के जन्म-दिन के रूप में

चित्र 28. भारतीय पर्व →
1. बुद्ध पूर्णिमा, 2. महावीर जयंती, 3. गुरुनानक जयंती, 4. क्रिसमस, 5. ईद मिलन, 6. गुडी पाडवा, 7. नौका दौड़ (ओणम), 8. होली, 9. राम नवमी, 10. ओणम, 11. वाल्मीकि, जयंती, 12. जन्माष्टमी (भगवान श्री कृष्ण)

1
2
3
4
5
6
7
8
9
11
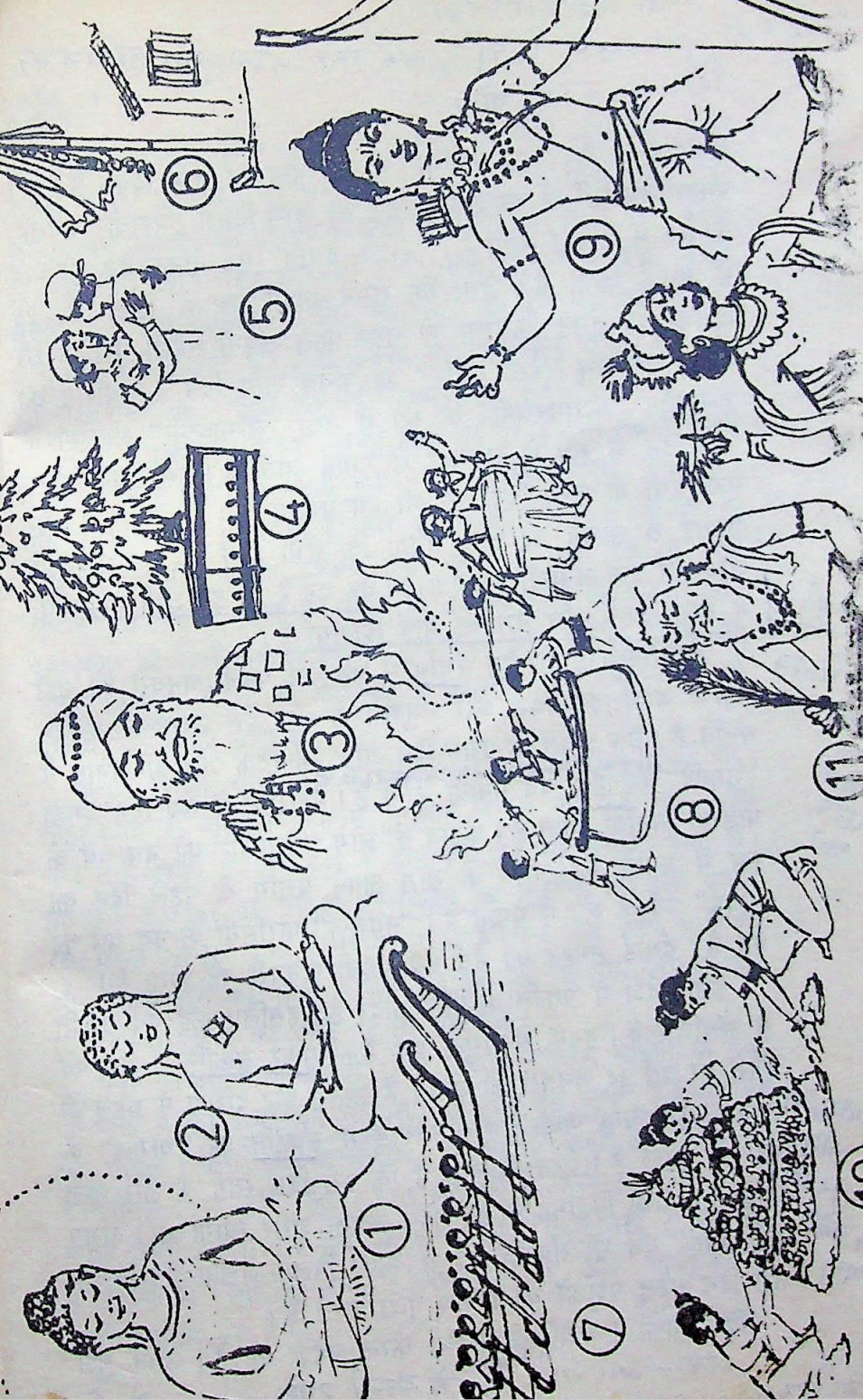
मनाई जाती है। "बुद्ध-पूर्णिमा" महात्मा बुद्ध का जन्म दिवस है। इसी प्रकार जैन धर्म के भगवान महावीर का जन्म दिवस "महावीर जयंती" के रूप में मनाया जाता है। "नानक-जयंती" गुरु नानक देव की याद में मनाई जाती है। जैसा कि तुमने अपने पत्र में लिखा है, 25 दिसंबर को तुमने क्रिसमस की चहल-पहल अपनी सहेली मैरी के घर देखी। यह प्रभु "ईसा मसीह" का पवित्र जन्म दिन है। श्रीराम का जन्म-दिन "श्रीरामनवमी" के रूप में तथा "जन्माष्टमी" श्रीकृष्ण के जन्म-दिन के रूप में धूमधाम से मनाई जाती है। इस प्रकार अन्य महापुरुषों के जन्म दिनों को भी हम पर्व के रूप में मनाते हैं। पर गहराई से सोचने पर तुम्हें लगेगा कि सभी धर्मों के महापुरुषों के जीवन में एक अनोखी समानता है। वह यह है कि इन सभी महापुरुषों ने सेवा, त्याग और प्रेम का मार्ग दिखाया है।

सुगंधमाला ! भारतीय पंचांग में नव वर्ष पहली जनवरी को नहीं मनाया जाता, हर प्रदेश और समुदाय के लोग इसे अलग-अलग दिन मनाते हैं। चैत्र शुक्ल के प्रथम दिन आंध्र, कर्नाटक और तमिलनाडु में "उगादि" (युगादि) पर्व मनाया जाता है। महाराष्ट्र में उस दिन "गुड़ी पाड़वा" मनाया जाता है। पंजाब के लोग "बैसाखी" को नव वर्ष के रूप में मनाते हैं। असम के लोग अपने पंचांग के पहले दिन को "बिहू" पर्व के रूप में मनाते हैं। "नवरोज" पारसियों के नव वर्ष का पर्व है। ईसाई समाज का नव वर्ष पहली जनवरी को होता है।

हमारे देश में प्रकृति के प्रति आदर है। इसलिए कई पर्व प्रकृति से संबंधित हैं। इनमें से प्रमुख पर्व है—"मकर संक्रांति"। यह पर्व जिसे हर वर्ष 14 जनवरी को मनाते हैं उत्तर और दक्षिण में बहुत ही उत्साह से मनाया जाता है। तमिलनाडु में संक्रांति को "पोंगल" के रूप में मनाते हैं। ऐसा विश्वास है कि इस दिन स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं। भीष्म पितामह ने इसी दिन अपना शरीर त्यागा था। असम का "बिहू" पर्व भी संक्रांति पर्व से काफी मिलता-जुलता है। किसान उस दिन घरेलू पशुओं की विशेष पूजा करते हैं।

प्रिय माला ! मेरी एक सहेली केरल प्रदेश की है। उसने मुझे

बताया कि हम लोग जिस उत्साह से "मकर संक्रांति" मनाते हैं, उसी उत्साह से वे "ओणम" पर्व मनाते हैं। "ओणम" के साथ राजा बली और वामन-अवतार की पौराणिक कथा जुड़ी हुई है। राजा बली बहुत ही न्यायप्रिय और परम दानवीर था। उसके शासन में प्रजा बहुत सुखी थी। ऐसा विश्वास हैं कि "ओणम" के दिन महाबली अपनी प्रजा को देखने आते हैं। प्रजा उनका स्वागत-सत्कार करती है। वैसे भी "ओणम" को "फूलों का पर्व" कहा जाता है।

माला ! तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि पूरे देश में नवरात्रि का बहुत महत्व है। वर्ष में मुख्य रूप से दो नवरात्रि मनाई जाती हैं। एक नवरात्रि चैत्र में पड़ती है और दूसरी आश्विन में। आश्विन में "विजया दशमी" जिसे 'दशहरा' भी कहते हैं, पूरे देश में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। दोनों ही नवरात्रियों में अष्टमी के दिन दुर्गा-पूजा की जाती है। बंगाल की दुर्गा-पूजा बहुत प्रसिद्ध है। तुम्हारे 'शांति निकेतन' में भी तो वर्षा-ऋतु के आगमन को "वर्षा मंगल" के रूप में मनाने की प्रथा है।

तुमने पिछले साल मुझे दीपावली की शुभकामनाएँ भेजी थीं। लंकाविजय के बाद अयोध्या में भगवान श्रीराम का राज़तिलक हुआ था। उसी खुशी में सारे देश में दीपावली का पर्व मनाया जाता है। यह पर्व अंधकार पर प्रकाश की विजय की निशानी है। इसी प्रकार रक्षा-बंधन भी पूरे देश में मनाया जाता है। इस दिन बहन भाई को और शिष्य गुरु को राखी बाँधते हैं। इस पर्व का ऐतिहासिक और सांप्रदायिक एकता की दृष्टि से भी महत्व है।

पर्वों की यह चर्चा अधूरी रहेगी यदि मैं मुस्लिम भाइयों के पर्वों की चर्चा न करूँ। मुस्लिम भाई साल में तीन ईद मनाते हैं। एक ईद को "ईदुल फितर" और दूसरी को "ईदुलजुहा" कहते हैं। तीसरी ईद है—"मिलाद-उन-नबी" जो हज़रत मुहम्मद के जन्म दिन के रूप में मनाई जाती है। राष्ट्रीय पर्वों के संबंध में मैं क्या लिखूँ ? तुम स्वयं ही जानती हो "स्वतंत्रता-दिवस", "गणतंत्र-दिवस" और "गांधी जयंती" हमारे राष्ट्रीय पर्व हैं।

माला ! पिछले साल बसंत पंचमी के समय हम लोग विश्वविद्यालय की ओर से वृंदावन गए थे। होली पर्व के समय हम वहीं थे। वहाँ होली धूमधाम से खेली जाती है। वहाँ के हुड़दंग को देखकर मैं दंग रह गई। ब्रज की होली बहुत प्रसिद्ध है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम होली के विषय में कुछ विस्तार से जानो। होली उत्तर भारत का बड़ा पर्व है। बसंत पंचमी से ही होली शुरू हो जाती है। यह रंगों और अबीर का त्यौहार है। फाल्गुन की पूर्णिमा को होली जलाई जाती है। दूसरे दिन लोग आपस में गुलाल लगाते हैं और रंग डालते हैं। यह एक ऐसा पर्व है जिसमें आयु, जाति, शिक्षा, वर्ग-भेद आदि को भुलाकर सब लोग परस्पर प्रेम से गले मिलते हैं। स्त्री-पुरुष, बच्चे अपनी-अपनी टोलियाँ बनाकर मस्ती से नाचते और फाग गाते हुए नगर-गाँव में घूमते हैं।

होली शब्द का संबंध होलिका से है। तुम्हें शायद मालूम होगा कि प्रह्लाद का पिता हिरण्यकश्यप चाहता था कि संसार उसकी पूजा भगवान के रूप में करे। प्रह्लाद ने अपने पिता की यह बात नहीं मानी और वह भगवान विष्णु की पूजा करता रहा। उसने प्रह्लाद को तरह-तरह के कष्ट दिए। हिरण्यकश्यप की बहन होलिका को वरदान था कि आग उसे जला नहीं सकती। इसलिए उसने अपनी बहन से कहा कि वह प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर आग में बैठ जाए। आश्चर्य की बात है कि होलिका तो आग में जल गई, लेकिन भगवान की कृपा से प्रह्लाद बच गया।

इस कथा से यह संदेश मिलता है कि वरदान आत्मरक्षा के लिए होता है। जब उस वरदान का उपयोग दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए होता है तब उसकी शक्ति समाप्त हो जाती है।

माला ! भारत-भूमि महान है। भारत में हर मास और तिथि की अपनी महिमा है। ऐसी कोई तिथि नहीं है जिस दिन कोई न कोई

चित्र 29. भारतीय पर्व — 1. दीपावली, 2. दुर्गाष्टमी, →
3. हरियाली तीज, 4. गणेश पूजा, 5. रक्षाबंधन, 6. दशहरा।

पर्व न पड़ता हो, जैसे प्रतिपदा को 'उगादि' मनाते हैं। दूज की तिथि का संबंध "भाई दूज" से है। तीज 'हरतालिका' और 'हरियाली तीज' जैसे महिलाओं के व्रतों से जुड़ी हुई है। चौथ का संबंध "करवा चौथ" और "गणेश चतुर्थी" से है। पंचमी को 'नाग पंचमी' और 'बसंती पंचमी' मनाई जाती है। षष्ठी का संबंध बलराम की जन्मतिथि "हल षष्ठी" से है। सप्तमी के रूप में "रथ सप्तमी" और "संतान सप्तमी" मनाई जाती है। अष्टमी "जन्माष्टमी", "दुर्गाष्टमी" और "राधाष्टमी" से जुड़ी हुई है। नवमी का संबंध "श्रीरामनवमी" से है। दशमी तो विजयदशमी है ही। दशमी "गंगा दशहरा" से भी जुड़ी हुई है। एकादशी को लोग 'निर्जल एकादशी', "देवशयिनी एकादशी", 'देवोत्थान एकादशी' मनाते हैं। 'वामन द्वादशी' द्वादशी को पड़ती है। उसी दिन केरल में "ओणम" मनाया जाता है। त्रयोदशी का संबंध "धन्वंतारि जयंती" और "धनतेरस" से है। 'नरक चतुर्दशी', बैकुण्ठ चतुर्दशी और "अनंत चतुर्दशी" चतुर्दशी को मनाई जाती हैं। तुम्हें तो यह मालूम होगा ही कि "नरक चतुर्दशी" के दिन भगवान श्रीकृष्ण ने "नरकासुर" का वध किया था। अब आती है पंद्रहवीं तिथि अर्थात् "अमावस्या" और "पूर्णिमा"। ये दोनों ही तिथियाँ पर्व के रूप में मनायी जाती हैं। अमावस्या के दिन लोग "दीपावली" और "पितृ अमावस्या" मनाते हैं। रही पूर्णिमा की बात वह तो "होली", "रक्षा-बंधन", "शरद पूर्णिमा" और बुद्ध-पूर्णिमा" के रूप में अनेक बार मनाई जाती है। माला ! अब तुम समझ गई होगी कि ये पर्व हमें याद दिलाते हैं कि हम जीवन में अकेले नहीं हैं। पर्व हमारे सामाजिक सोच और सामुदायिक जीवन का विकास करते हैं। ये सामाजिक संबंधों में आने वाले तनावों को कम करते हैं। इनसे परस्पर प्रेम-संबंध मज़बूत होते हैं।

आशा है तुम मुझसे सहमत होगी कि हमारे पर्व सारे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधते हैं। इनसे अनुभव होता है कि हमारी परंपरा और हमारी संस्कृति एक है। ये पर्व हमें प्रति वर्ष अपने पूर्वजों और उनके महान् आदर्शों की याद दिलाते हैं और जीवन में कठिनाइयों से संघर्ष

करने की प्रेरणा देते हैं।

मेरी प्यारी सखी, पर्वों के साथ एक विशेष बात और जुड़ी हुई है। वह है—लोक-कथाएँ और मनोरंजन। तुम तो कला प्रेमी हो ही। पर्वों पर तरह-तरह की कलाओं का प्रदर्शन होता है। ये कलाएँ हमारे मन को लुभा लेती हैं। आंध्र का लोक-नृत्य "बोनालु" और लोकगीत "बतकम्मा" और उत्तर भारत का (होली पर रासलीला के ढंग पर होने वाला) लट्ठमार 'लोक-नृत्य', रामलीला, नौटंकी आदि प्रसिद्ध हैं।

अंत में मैं इतना ही कहूँगी कि भारत में लगभग प्रतिमास कोई न कोई पर्व-त्यौहार मनाया जाता रहता है। कोई भी ऋतु हो, कोई भी प्रदेश हो, सभी में चारों ओर मेलों, पर्व-त्यौहारों, लोकनृत्यों, लोक नाटकों का ताँता-सा लगा रहता है। और उसमें सर्वत्र एकरूपता के दर्शन होते हैं। इसीलिए भारत को 'पर्वों का देश' कहा जाता है।

शेष अगले पत्र में। अपनी सहेलियों को मेरा नमस्कार कहना। पत्र का उत्तर शीघ्र देना। अपनी पढ़ाई के विषय में विस्तार से लिखना।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

तुम्हारी सखी
जयप्रदा

सेवा में,
कुमारी सुगंधमाला
गर्ल्स हॉस्टल, कमरा नं. 40. राजभारती स्कूल
शान्ति निकेतन (प. बंगाल)

बोध-प्रश्न

1. जीवन में पर्वों का क्या महत्व है ?
2. जन्म-तिथि वाले पर्व कौन-कौन से हैं ?
3. "उगादि" किस प्रकार का पर्व है और वह कहाँ मनाया जाता है ?

4. "मकर संक्रांति" की तरह असम में कौन-सा पर्व मनाया जाता है ?
5. किसानों का पर्व आप किसे मानते हैं ? और क्यों ?
6. "गुड़ी पाड़वा" कहाँ मनाया जाता है ?
7. मुस्लिम-पर्व कौन-कौन से हैं ?
8. वह कौन-सी तिथि है जिस दिन साल-भर में सबसे अधिक पर्व मनाए जाते हैं ?
9. राष्ट्रीय-पर्व कौन-कौन से हैं ?
10. लोक-कलाएँ किन पर्वों पर प्रदर्शित होती हैं ?

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

शब्द	अर्थ
त्याग	— अच्छे उद्देश्यों के लिए अपने सुखों को छोड़ देना
सांप्रदायिक	— संप्रदाय संबंधी
हुड़दंग	— ऊधम, शोर, हलचल
दंग	— चकित
विविधता	— तरह-तरह के रूप, अलग-अलग
सामुदायिक	— समुदाय संबंधी, लोगों द्वारा मिलजुल कर किए जाने वाले कार्य की योजना
असुर	— राक्षस
ऊब	— थकान
वरदान	— ईश्वर द्वारा प्रदत्त शक्ति, सिद्धि
नीरसता	— जिसमें आनंद न हो
संघर्ष	— सामना, मुकाबला
संस्कृति	— भीतर की सभ्यता, जीवन मूल्य, चिंतन

परिशिष्ट

शब्दार्थ एवं टिप्पणी

अ

अंतर्यामी -- मन की बात जानने वाला

अतीत -- बीता हुआ

अद्यतन -- आज तक, आधुनिक

अधिवेशन -- किसी कार्य-विशेष के लिए आयोजित विशेष सभा

अनमोल -- जिसका कोई मूल्य न हो, महत्त्वपूर्ण

अनन्य प्रेम -- केवल एक के प्रति सच्चा प्रेमभाव

अनुग्रह -- कृपा

अनुयायी -- अनुसरण करने वाला

अड़ जाना -- ज़िद करना

अडिग -- अटल

अपंग -- अंगहीन, जैसे -- लंगड़ा, लूला

अभंग -- नामदेव के गाए गए पदों का नाम

अरबी घोड़ा -- अरब का या अरबी नस्ल का घोड़ा

अल्लामियाँ को प्यारा होना (मु.) -- मृत्यु हो जाना

अवतरण -- जन्म, गद्यांश, पद्यांश, प्रसग

अवशेष -- जो बच गया हो, खंडहर

अस्त होना -- डूबना

अहसास -- अनुभव

अहिंसात्मक -- बिना लड़ाई-झगड़े या मारपीट के

असुर -- राक्षस

आ

आंदोलन -- किसी बुराई को हटाने अथवा अच्छाई लाने के लिए किया गया संगठित तथा सामूहिक प्रयत्न

आग्रह -- किसी बात पर बार-बार ज़ोर देना

आतंकित -- भयभीत

आत्मविश्वासी -- स्वयं पर विश्वास करने वाला

आत्मसात -- हृदय से किसी वस्तु या विचार को स्वीकार कर लेना

आदिग्रंथ -- सिखों की धर्म पुस्तक : ***गुरुग्रंथ साहिब***

आध्यात्मिक -- आत्मा-परमात्मा संबंधी ज्ञान

आविर्भाव -- प्रकट
आवागमन -- एक स्थान से दूसरे स्थान पर आना-जाना
आश्रयदाता -- आश्रय या शरण देने वाला

इ

इंतजाम-- व्यवस्था
इष्टदेव -- मनोनुकूल देवता

उ

उत्कृष्ट -- उन्नत, श्रेष्ठ , उत्तम
उत्पादक वर्ग -- पैदा करने वाला वर्ग या समुदाय
उन्नायक -- उन्नति की ओर ले जाने वाला
उपासना -- पूजा
उल्लेख -- वर्णन, चर्चा
उल्लेखनीय --वर्णन करने योग्य
उस्ताद -- गुरु

ऊ

ऊब -- थकान

ऋ

ऋतु -- मौसम

औ

औद्योगीकरण -- देश को उद्योग प्रधान बनाने का कार्य या योजना

क

कंठ -- गला
कड़वा घूँट पीना (मु.) -- अप्रिय बात सहन करना
कदापि (नहीं) -- कभी भी (नहीं)
कर्मकांड -- हवन, जप, पूजा आदि धार्मिक क्रिया-कलाप
काक-विष्ठा -- कौवे का मल
क्रांतिकारी -- स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने वाले गरम दल के लोग

क्रिया कलाप -- कार्य और व्यवहार
कुएँ की पक्की जगत -- कुएँ के चारों ओर बना पक्का चबूतरा

ख

खंडन -- विरोध
खण्डकाव्य -- छोटी काव्य रचना, जिसमें किसी महापुरुष के जीवन की किसी एक प्रसंग का वर्णन हो
खामोश -- शांत
ख्याति -- प्रसिद्धि

ग

गंधर्व -- देवलोक के गायक
गद्‌गद्‌ होना -- खुश होना
गणना -- गिनती
गलियारा -- संकरा रास्ता, गली जैसा मार्ग
गायन, वादन, नृत्य -- गाना, बजाना, नाचना
गिरोह -- झुंड, समूह
गुणवंती -- गुणों या अच्छाइयों से पूर्ण या युक्त
गोदी -- बंदरगाह, पत्तन

च

चिकित्सा कौशल -- इलाज या उपचार करने की निपुणता

छ

छायावाद -- कविता की एक शैली जिसमें अज्ञात संसार के प्रति जिज्ञासा, प्रकृति प्रेम तथा नए उपमानों का प्रयोग होता है।

ज

जन्मवार -- जन्मदिन, जन्मदिन के क्रम से
जिक्र -- उल्लेख, चर्चा
जीवन पद्धति -- जीवन जीने का ढंग
जोशीला -- उत्साहपूर्ण
ज्वाला भड़कना -- विरोध की भावना उत्पन्न होना

ठ

ठीकरा — मिट्टी के बर्तन का टूटा हुआ टुकड़ा

ड

डेरा डालना — सामान के साथ टिकना

त

त्याग — अच्छे उद्देश्यों के लिए अपने सुखों को छोड़ देना
त्यागराज — दक्षिण के सुप्रसिद्ध संत और संगीतज्ञ
तरस खाना (मु.) — दया करना, हमदर्दी जताना
तुलना — बराबरी, मुकाबला
तोरण द्वार — मुख्य दरवाजा, प्रवेश द्वार

द

दंग — चकित
दलबल — शक्तिशाली समूह
द्रविड़ — दक्षिण भारत से संबद्ध जाति अथवा समूह
दिल तोड़ना (मु.) — हिम्मत तोड़ना, दुःख पहुँचाना
दिलचस्पी — रुचि
दिव्य पुरुष — महान प्रतिभाशाली, देवताओं के समान गुणों वाला मनुष्य

ध

धर्मनिरपेक्षता — किसी भी धर्म के प्रति पक्षपात की भावना न रखना

न

नई कविता —छंद विहीन कविता
नाट्य पद्धति — नाटक
निर्गुण — गुणरहित, निराकार
नीड़ — घोंसला
नीरसता — जिसमें आनंद न हो रसहीन, रूखापन
नेतृत्व — किसी नेता द्वारा जनता को किसी दिशा की ओर ले जाना
नृत्य-मुद्रा — नाचने की भंगिमा, मुख-हाथ तथा गर्दन आदि अंगों की विशेष-मुद्रा
न्योछावर — बलिदान

प

परिचालित — चलाया जाना

परिपक्व — पका हुआ, प्रौढ़

परिलक्षित होना — दिखाई देना

परिस्थिति — चारों ओर की स्थिति

पश्चिममुखी — जिसका मुँह पश्चिम दिशा की ओर हो

पाश्चात्य — पश्चिमी

पुनर्जागरण — फिर से सावधान होना, जाग जाना, सचेत होना

पूर्वमुखी — जिसका मुँह पूर्व दिशा की ओर हो

पेशगी — किसी वस्तु को लेने से पहले उसका पूरा या आंशिक मूल्य चुका देना

प्रकांड — उत्तम, श्रेष्ठ

प्रकाशन — प्रकट करना, पुस्तक के रूप में छप जाना

प्रकोष्ठ — बड़ा कमरा

प्रखर —तीव्र

प्रगतिवाद — काव्य-साहित्य की एक नई शैली जो समाज की जनवादी शक्ति की उन्नति पर जोर देती है

प्रणयता — रचयिता, लेखक

प्रतिपादन करना — ज्ञान कराना, प्रस्तुत करना

प्रतिबंध — मनाही, रोक लगाना

प्रतिष्ठा — सम्मान, गौरव, मान-मर्यादा

प्रबल — बहुत अधिक

प्रयास — कोशिश

प्रयोगवाद — भाषा, विषय, भाव, छंद आदि संबंधी पुरानी परंपरा के विरोध में नए-नए प्रयोग करने की साहित्यिकों या कवियों की नयी प्रवृत्ति या नयी काव्य-शैली

प्रवर्तक — जन्म देने वाला, नए कार्य को प्रारंभ करने वाला

प्रवाहित — बहाई गई

प्रवृत्ति — विशेषता, किसी विषय की ओर झुकाव

प्रामाणिकता — जो प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध हो, जो किसी बात का प्रमाण या सबूत हो।

प्रेरणादायक — प्रेरणा देने वाला

प्रोत्साहित — उत्साहित करना

प्रौद्योगिकी — मशीनी या तकनीकी

फ

फ़ौरन – तुरंत

ब

बंदिश –गीत की स्वर योजना
बदनसीब – अभागा
बहिष्कार – विरोध
बाग़-बाग़ होना (मु.) – खुशी से झूम उठना
बुआ – पिता की बहन, फूफी
बौद्धिक – बुद्धिजीवी, बुद्धि संबंधी

भ

भाँपना – जान लेना
भाव-विभोर होना – भावना में डूबना

म

मनोविकार – क्रोध, काम, हर्ष, शोक आदि संवेग
मनोहारी – मन को लुभानेवाला
महाकाव्य – बड़ी काव्य-रचना, जिसमें किसी महापुरुष के पूरे जीवन का वर्णन हो।
मानक गद्य – गद्य का सर्व-स्वीकृत और साहित्यिक रूप
मासूम – भोला-भाला, निर्दोष
मुकाबला – सामना

य

यवनिका – नाटक में प्रयुक्त मंच के सामने का परदा
यात्रा-वृत्तांत – यात्रा संबंधी वर्णन
योगदान – सहयोग देना
रंग-भेद-नीति – अंग्रेजों का रंग गोरा था अतः वे भारतीयों को काला समझकर अच्छा व्यवहार नहीं करते थे।
राष्ट्रीय चेतना – देश की उन्नति और सम्मान के लिए कार्य करने की भावना
रिपोर्ताज़ – किसी घटना की रिपोर्ट
रूढ़ि – परंपरा

रेडियो-रूपक — रेडियो द्वारा प्रसारित नाटक
रेलिंग — भवन, सड़क आदि पर लोहे, लकड़ी, पत्थर आदि से बनी रोक

ल

लानत — धिक्कार
लिबास — वेश
लीला — क्रीड़ा, अवतारों के चरित्र का अभिनय
लुप्त — छिपना, खो जाना
लुभा लेना — मोहित कर लेना

व

वर — दूल्हा
वरदान — ईश्वर द्वारा प्रदत्त शक्ति, सिद्धि
वर्णाश्रम व्यवस्था — जीवन में चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तथा चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संयास में आस्था रखने वाली व्यवस्था
वाद्य-यंत्र — बाजा, बजाने का साज
वारकरी — विष्णु (विट्ठल) भक्तों का संप्रदाय
वास्तुशिल्प — भवन, मंदिर आदि इमारत बनाने की कला
वितरण — देना, बाँटना
विदुषी — विद्वान स्त्री
विद्रोह — किसी गलत बात के विरोध में की जाने वाली सामूहिक लड़ाई
विधा — प्रकार, ढंग, शैली
विपुल — अत्यधिक
विभाजित — बँटा हुआ
विरासत — परंपरा से प्राप्त
विलक्षण — विचित्र, निराला
विवश — मज़बूर
विविधता — तरह-तरह के रूप, अलग-अलग
विशिष्ट — विशेष
विषमता — कठिनाई
वैभव विलास — ऐश्वर्य के साधनों का भोग
वैयक्तिकता — निजता, व्यक्तिगत रूप

व्याकुल — बेचैन
व्यापक — फैला हुआ
व्याप्त — समाया हुआ

श

शहीद होना — देश या समाज के हित में प्राण त्यागना
शाश्वत — जो सदैव एक जैसा रहे
शास्त्रार्थ —शास्त्रों पर वाद-विवाद, विद्वानों की बहस

स

संकल्प — प्रतिज्ञा
संकीर्णता — संकुचित विचारधारा
संघर्ष — मुकाबला, संग्राम
संधिकाल — विभिन्न प्रवृत्तियों का मिला-जुला काल
संचार होना — फैल जाना
संस्कृति —भीतर की सभ्यता, जीवन मूल्य, मानसिक विशिष्टता, चिंतन आदि
सगुण — गुण सहित, साकार
सत्ता — शासन, अस्तित्व
समकालीन — उसी समय/ काल का
समन्वय — संयोग, मेल, कुछ स्वयं झुकना तथा कुछ दूसरे को झुकाना
समभाव — समान विचार, सबका समान समझना
समर्पित करना — देना, चढ़ाना, भेंट करना
समानता — एकरूपता
समानांतर — एक जैसे/ जैसी
समाराधना = भजन, कीर्तन द्वारा भक्ति
समालोचना — किसी व्यक्ति या विषय के पक्ष-विपक्ष में तर्कपूर्ण मत व्यक्त करना
समाहित — लीन, मिला हुआ, सम्मिलित
समृद्धि — उन्नति, प्रगति
सरगर्मी — सक्रियता, पूरी शक्ति और जोश के साथ
सर्व-धर्म-समभाव — सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना
सर्वाधिक — सबसे अधिक
सर्वोत्तम — सबसे अच्छा
सहन —आँगन, सहन करना

सहमति – स्वीकार करना
सांप्रदायिक – संप्रदाय संबंधी
सामंत – बड़ा ज़मींदार
सामर्थ्य – शक्ति, बल, क्षमता
सामुदायिक – समुदाय संबंधी, लोगों द्वारा मिलजुल कर किए जाने वाली कार्य-योजना
साक्षात् – आँखों के सामने, सचमुच
सौतेली बहन – विमाता की बेटी, दूसरी माता की संतान
स्थानांतरण – तबादला, ट्रान्सफर
स्वतंत्रता-संग्राम – देश की स्वतंत्रता के लिए किया जाने वाला देशव्यापी प्रयास

ह

हथकरघा – हाथ से चलाया जाने वाला करघा, जिससे कपड़ा बुना जाता है
हड़पना – किसी दूसरे की वस्तु को जबरदस्ती लेना
हलचल – खलबली
हाथ पाँव फूलना (मु.) – डर जाना
हानि – नुकसान
हुड़दंग – ऊधम, शोर, हलचल